

अभिव्यक्ति

अंशिका उपाध्याय

आलोक प्रकाशन

अभिव्यक्ति



अंशिका उपाध्याय

एम.एस (इलेक्ट्रिकल एंड कम्प्यूटर इंजीनियरिंग)

यूनिवर्सिटी ऑफ मिशिगन, एन आर्बर, यू.एस.ए

Copyright 2017 – Anshika Upadhyay

ई-प्रकाशन - आलोक प्रकाशन

निवेदन

पाठकों से मेरा निवेदन है कि मेरी इस “अभिव्यक्ति” को पढ़ कर इस पर आपकी जो भी प्रतिक्रिया हो उससे मुझे अवगत अवश्य करावें. मेरी पुस्तक “अभिव्यक्ति” मेरा प्रथम उपक्रम है. यह सभी कहानियां मेरी एवं मेरे जैसे सभी मित्रों की सम्मिलित आवाजें हैं जो कहीं दब गयीं हैं. इस पुस्तक के ज़रिये मैं उन सभी आवाजों से आप का परिचय कराना चाहती हूँ. मैंने अपने देश से बहुत दूर अमरीका के एक ख्यातिप्राप्त विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के दौरान इन कहानियों की रचना की है. मैंने अपनी इन कहानियों को इस संकलन में यह सोच कर बांधा है कि मैं, अपनी इन अभिव्यक्तियों को आप सब तक ज़रूर पहुंचा पाऊँगी. मेरी कहानियों के रंग विचित्र होते हुए भी समसामायिक हैं. मुझे भरोसा है कि मेरे व्दारा बिखेरे रंग आपको अवश्य बहुत कुछ सोचने पर मजबूर कर देंगे. मैं आभारी हूँ “आलोक प्रकाशन” की जिन्होंने मुझे मेरी अभिव्यक्ति ज़ाहिर करने का समुचित योगदान व मंच दिया. मैं अपने गुरुजनों व माता-पिता को अपना यह संकलन समर्पित करती हूँ क्योंकि यह सब लोग सदैव मेरे प्रेरणा स्रोत रहे हैं.

अंशिका उपाध्याय

तालिका

क्रमांक	विषय	पृ.संख्या
1	आत्मबोध	5
2	बिसात	9
3	निष्फल भक्ति	16
4	ज़ालिम तहज़ीब	20
5	गुलाम	28
6	घमासान	34
7	विष	38
8	ग्रहण	41
8	परिपक्व	45
10	शिखर	52
11	हीरे	55
12	तोड़-नीति	62
13	डींगर	77



1

आत्मबोध

आँखें मूंदे बहुत देर से कृति अपने आप से ही बतिया रही है. यह पहला अवसर नहीं है की वो स्वयं से ही बातें कर रही हो. जब से होश संभाला है वो हर रात बिस्तर पर लेट अपने आप से सदैव बातें करती आई है. उस समय वो अपनी अंतरात्मा के बहुत नज़दीक होती है. आत्मावलोकन का इससे अच्छा समय भला और क्या हो सकता है.

कृति उस समय शरीर और आत्मा दो अंगों में विभाजित हो जाती है. शरीर जिसमें दिमाग है और आत्मा जो शक्ति पुंज है. सही और ग़लत का हिसाब रखने वाला दिमाग भी उसे उस समय आत्मा के अधीन सा होता नज़र आता है. आत्मा उसे सदैव सही मार्ग पर चलने को प्रेरित करती है. जिसको दिमाग बिना प्रतिक्रिया किये सदा ही आत्मसात कर लेता है.

कृति आज एक सफल इंसान है. उसने जो कुछ भी पढ़ना या बनना चाहा, वह पढ़ भी सकी व बन भी पायी. परन्तु आज जाने किस अंतरद्वंद में फंस गयी है, कृति.... सहसा अपनी ही प्रतिध्वनि को ढूंढने में विवश कृति को महसूस होता है कि नहीं यह उसकी आवाज़ कभी थी ही नहीं. यह आवाज़ तो हूबहू मां की आवाज़ सी प्रतीत होती है. हां.... नहीं नहीं.... शायद पापा के शब्द भी घुले-मिले से प्रतीत होते हैं. पर तभी, अहसास होता है मानो इन आवाज़ों में किन्ही अन्य लोगों की भी आवाज़ें घुली-मिली सी हैं....

हां शायद उन सबकी आवाज़ें भी हैं जिन्होंने कभी उसे प्रेरित किया था. सब आवाज़ें घुल-मिल गयीं हैं एक- दूसरे में, तो फिर उसकी आवाज़ कहाँ गुम हो गयी भला? वो व्यथित हो गयी है. वो ढूंढना चाहती है अपनी अंतरात्मा की आवाज़ को, परन्तु...वो है कहां? नहीं इनमे से कोई भी

आवाज़ उसकी अंतरात्मा की आवाज़ नहीं है. बिल्कुल नहीं.....उपफ....वह अचकचाकर उठ बैठी है. अर्थात्, उसने आज तक जो कुछ भी किया, वह उसने कभी चाहा ही नहीं था!!! जिसे वो आज तक अपनी आवाज़ समझती आई थी वो कभी उसकी आवाज़ थी ही नहीं. कैसी अबूझ पहेली है यह.... किस चक्रव्यूह में फंस गयी है कृति?

तभी कमरे के अंदर फैली हलकी रौशनी उसे बोध कराती है उसकी जागृत अवस्था का. वो धीरे से फिर आँखें मूंद लेती है. अबकी बार उसे अहसास होता है, उस मीठे से अपनेपन का, जो उससे कह रहा है कृति अब तुम स्वयं को ज़रूर ढूँढ पाओगी. तुम स्वछंद, निर्भीक और साहसी हो. तुम्हारे पास सोचने व समझने की पर्याप्त क्षमता है. स्वयं की खोज के लिए उठती आवाज़ ही, तुम्हारे अंतर्मन की सच्ची आवाज़ है. हाँ यह आवाज़ कुछ अलग है. परन्तु.... जानी पहचानी है, क्योंकि यह पूर्णतयः उसकी अपनी आवाज़ है, विशुद्ध कृति की आवाज़....

गहरी शान्ति और नीरवता मन में उत्फुल्लता जगा रही है. खुद से खुद का यह मिलन बड़ा अनूठा प्रतीत हो रहा है. गांठें खुलती जा रहीं हैं, अब कोई ग्रंथि नहीं है. वो अपने आप से एकाकार हो रही है. अजीब उनींदापन सा पसर रहा है....

पलकें नींद से बोझिल हो रहीं हैं. सहसा ही वह आँखों में
कैद अपने सुनहरे सपनों का उड़न खटोला ले हवा में उड़ने
निकल पड़ी है किसी बहुत दूर अनदेखे अनजाने रास्ते की
ओर.



2

बिसात

रोज़ की तरह आज भी सामने मेज़ पर शतरंज की बिसात बिछी है. अपराजित ने फिर वही अपनी पहली रोज़ाना वाली चाल चल दी है, राजा की तरफ वाला घोड़ा... विजय का दिमाग अब चकराने लगा है अपराजित की वही घिसी-पिटी चाल के फिर चलने से. वह शतरंज के इस खेल को खेल के रूप में देखे या, इसे अपने किसी असफल होते हुए प्रोजेक्ट के रूप में. यूँ तो वो ऐसे अनेकों प्रोजेक्ट्स पर काम कर रहा है परन्तु यह प्रोजेक्ट उसके लिए वो अधूरा सपना

बनता जा रहा है जिसके पूरा “ना” होने पर जैसे उसका सारा जीवन ही अधूरा और अर्थहीन हो जाने वाला है. उसका मन इस खेल से आज बिल्कुल उचाट है. दिमाग बहुत उव्दिग्न हो खुद ही से प्रश्न कर रहा है - “अगर यह प्रोजेक्ट विफल रहा तब क्या होगा”? वह सर झटक कर जैसे थोड़ी देर के लिए अपनी सारी परेशानियां टाल देना चाहता है. परन्तु उसके लिए यह कर पाना इतना आसान भी तो नहीं है. यह शतरंज की बाज़ी उसके लिए एक अबूझ पहेली सी बनती जा रही है.

यह सच है कि “ह्यूम्नोइड” मनुष्य की हूबहू अभिव्यक्ति करती मशीन बनाना आज की तारीख में कोई बहुत बड़ी बात नहीं रह गयी है. परन्तु इस प्रोजेक्ट की विशेषता तो उस “ह्यूम्नोइड” की दिमागी प्रतिक्रियाओं को समझ कर अपने अनुरूप ढालने में है. हर छोटी-बड़ी अज्ञात परिस्थितियों में वह क्या प्रतिक्रिया करेगा? यह देखकर न सिर्फ समझना है, बल्कि यह भी जांचना है कि उसका मशीनी दिमाग कठिन समय में कैसे अपना बचाव करता है!! खासकर, कोई समस्या या चुनौतीपूर्ण परिस्थिति उत्पन्न होने पर यह “ह्यूम्नोइड” अपने लिए कैसे उचित रास्ते बनाता है. इस ह्यूम्नोइड “अपराजित” का दिमाग

पौसीट्रोनिक है और उसे न्यूरोल नेटवर्किंग की आधुनिक तकनीकों से सक्रिय किया गया है.

इसमें कोई संदेह नहीं कि अपराजित बड़ी से बड़ी समस्याओं को आसानी से हल करने में पूर्णतयः सक्षम है. इतना ही नहीं, वह हजारों सालों तक बिना किसी गड़बड़ी या खराबी के काम करते रहने में भी सक्षम है. इसीसे खुश होकर विजय ने इसको “अपराजित” नाम दिया है. पहले अपराजित की यही सब अनूठी बातें व खूबियाँ विजय को गद्गद कर देती थीं. वह खुश होता था कि इस बुद्धिमान एवं अति विलक्षण ह्यूमनोइड की रचना उसके हाथों हुई है. वह सोचता था कि मानव जाति की अबूझ पहेलियों को हल करने से वह बस कुछ ही पग दूर है. परन्तु अब, उसे अपनी ही “रचना” अपने, रास्ते का काँटा लग रही थी. यह शतरंज का खेल जो उसके लिए अपराजित की दिमागी प्रतिक्रियाओं को समझने का एक सफल प्रयास था, वही शतरंज की चालें अब विजय के सामने विकट व अनुत्तरित समस्या बन कर खड़ी हो गयीं हैं.

शुरुआत में विजय अपने प्यारे रोबो पर तरस खाकर स्वयं ही खेल की पहली चाल चल देता था, यह सोचकर कि “इस बेचारे रोबो को खेल के नियमों का बोध तो है, परन्तु कदाचित वह उसकी तरह शतरंज का मंजा हुआ खिलाड़ी

नहीं है. वैसा बनने में उसे अभी काफी समय लगने वाला है". विजय सदैव आक्रामक खेलता और अपराजित केवल अपना बचाव करता. शुरू- शुरू में हर बाजी का अंत विजय की जीत से होता परन्तु बाद में यह जीत द्रा में परिवर्तित होने लगी. किन्तु विजय की उम्मीदे इससे कहीं ज्यादा थीं, वह तो उससे हारना चाहता था. यूं तो उसे जीतने में बहुत मज़ा आता था, परन्तु उसकी यह लगातार जीत ही उसकी तकनीकी-कुशलता पर प्रश्नचिन्ह लगा रही थी, जो उसे कतई मंज़ूर नहीं था. जो भी हो, उसे अपने हुनर पर पूरा भरोसा था, और वह दुनिया को दिखा देना चाहता था कि उसकी यह मशीन संसार की सबसे शातिर और बुद्धिमान मशीन है.

अब वह खेल के इन द्रा वाले नतीजों से बौखलाने लगा था. उसे एक निर्णायक नतीजा चाहिए था, चाहे वह किसी के भी पक्ष में हो. उसने सब कुछ कर के देख लिया, अपना गेम बदला, बचाव में खेला, अपराजित से पहली चाल चलवा कर देखा, उसे अन्य कई मौके और भी दिये खुद को परास्त करने के, परन्तु कोई फायदा नहीं हुआ...

विजय को मामले में संगीनता लगी और इसलिए उसने निर्णय लिया कि रोबो की कुछ सेटिंग्स शायद बदल कर फिर से ठीक करनी होंगी. वैसे तो उसमें भी सामान्य कार्यों

के लिए, एक सामान्य कम्प्यूटर वाली ही सारी सेटिंग्स थीं परन्तु विजय को लगा कि कहीं कुछ ग़लत है... सारी जांच के बाद वह हतप्रभ रह गया. सब कुछ स्वाभाविक था. कहीं कुछ भी असामान्य नहीं था. रोबो की प्रोग्रामिंग अभी भी बहुत ही साधारण स्तर की थी. विजय ने सारी सेटिंग्स फिर एक बार बदलकर व और भी नीचे के स्तर की कर के लगभग बंद सी ही कर दीं. केवल उसकी कोगनिटिव क्षमता उच्च स्तर की रहने दी. उसे लगा, ऐसा कर के वो समस्या की जड़ तक अवश्य ही पहुँच जायेगा. इस तरह वह उसकी एक-एक दिमागी क्षमता में फेर-बदल कर उनका पुनरीक्षण करते हुए ज़रूर उस सिरे तक पहुँच पायेगा जहां उसे अपनी गलती पकड़ में आ जायेगी. परन्तु, वह हैरान रह गया... जतन से किये इस पूरे परिश्रम का कोई भी निष्कर्ष नहीं निकला. वह कहीं भी रोबो में कोई गलती या कमी नहीं ढूँढ पाया, और शतरंज का नतीजा भी वही जैसे का तैसा रहा.

विजय अब असामान्य था, या यूँ कहा जाए की वह अब बेहद डरा हुआ था. उसे अपनी ही बनायी इस मशीन से अब भय लग रहा था. उसके सामने बैठ कर खेलते हुए उसे अहसास हो रहा था, जैसे वो किसी मशीन के सामने नहीं बल्कि किसी जीते जागते प्राणी के सामने विराजमान है. एक ऐसा प्राणी जो अपनी गतिविधियों का न सिर्फ, स्वयं

संचालन कर सकता है अपितु वो कुछ अप्रत्याशित करने में भी सक्षम है. “अपराजित” का निर्माण करने में उसने एसिमोव के बताये रोबोटिक्स के तीनों नियमों का विशेष ध्यान रखा था क्योंकि उनका पालन करना तो अधिनियम जैसा अनिवार्य था. यह नियम उसकी हर सेटिंग, हर क्षमता में घुले-मिले थे.

विजय ने उसका निर्माण यही सोच कर किया था, कि इस रोबो का पौंसिट्रोनिक दिमाग ऐसा विलक्षण साबित होगा जिसको किसी भी खास तरह की प्रोग्रामिंग की ज़रूरत कभी नहीं पड़ेगी, और वह कुदरत के सभी नियमों का पालन बहुत ही निम्न बोध होने के बाद भी बड़ी आसानी से कर पायेगा. उसका दिमाग क्वांटम फिसिक्स की सहायता से स्वयं ही हर एक चुनौती के सभी समाधान एक साथ करते हुए सही नतीजों पे पहुँचने में सक्षम होगा. इस तरह “रोबोटिक्स के वे नियम जो रोबोट को मानवता की सदैव रक्षा करने का आदेश देते हैं”, उन्हें ही वह मानवता के संरक्षण हेतु उपयोग कर रोबोट को एक योग्य कर्मचारी बना कर मानव जाति को एक अनोखी भेंट दे सकेगा.

विजय ने कुछ निश्चय कर एक अंतिम बार वही अपनी पुरानी चाल चली... परन्तु उसे अहसास हुआ जैसे अब कुछ बदल रहा था. “अपराजित” ने अबकी बार बचाव करते हुए

उन पुरानी चालों का एक नया जवाब दिया. विजय को ऐसा प्रतीत हुआ मानो “अपराजित” उसकी मनः स्थिति भांप कर उसका परिहास उड़ा रहा हो. विजय को उसकी चली इस चाल से प्रतीत हुआ कि, यह चाल उसने बहुत आगे की सोच कर चली है. अब वह विजय के दिमाग को बखूबी पढ़ रहा है और उसने जैसे निश्चय कर लिया है कि “वह” अब विजय को उसके मंसूबों में सफल नहीं होने देगा. वह विजय को “उसकी” सोच को समझने और अपने ऊपर स्वामित्य का मौका कभी नहीं देगा. डर से विजय के रोंगटे खड़े हो गए. वह जान गया था कि यह जो उसके सामने बैठा मुस्कुरा रहा है वह बहुत ही बलशाली है. वह इस “मशीन”...नहीं-नहीं... “प्राणी” को... ना तो हरा सकता है... ना ही उससे हार सकता है, ना ही उसे अपने वश में कर सकता है, और ना ही उसे मौत दे सकता है. विजय अब क्या करे... क्योंकि, यह भयंकर तेजस्वी प्राणी... अब सामर्थ्यवान है... वह न सिर्फ सोच सकता है अपितु सामने वाले का दिमाग भी बखूबी पढ़ सकता है... लाचार, भयातुर विजय डर के ठंडे पसीने से भीग गया.



3

निष्फल भक्ति

भक्ति पर सवाल उठाने के लिए कलम उठाओ तो जैसे शब्द साथ छोड़ते से प्रतीत होते हैं. मन अशांत व विचलित हो उठता है और आत्मा... वो तो धिक्कारने ही लगती है. आहत हो “वो” पुकार उठती है... “धैर्य है ही नहीं तुम्हारे भीतर”. दर्द को सहने की शक्ति तो प्रत्येक मुश्किल घड़ी के साथ बढ़ती जानी चाहिए, न की क्षीण होनी चाहिए. यही भक्ति तो शक्ति प्रदान करती है सबको, और तुम हो, जो ज़रा सी तकलीफ हुई नहीं कि लगे कलम उठाकर भगवान को शिकायती पत्र लिखने.

दिमाग कहता है... नहीं.... यह शिकायती पत्र नहीं है. यह मेरे मन के उस वीरान, अकेले कोने की अभिव्यक्ति है जो बढ़ता ही जा रहा है. शंका अब सवाल में परिवर्तित होने लगी है, कि हे भगवन, तेरे इम्तिहान लेने की और मेरे परीक्षा देने की कहीं कोई पराकाष्ठा, कोई सीमा भी!! या नहीं?

प्रत्येक सुबह तेरी अराधना कर मेरे कदम स्वयं ही चल पड़ते हैं अपनी कर्मस्थली की ओर. अच्छा या बुरा कुछ भी हो; या यूँ कहूँ कि बुरा और उससे भी बुरा; तब भी मेरी यह दिनचर्या कभी नहीं बदली. मैंने तुझसे कभी कोई सवाल नहीं किये. मेरा अंश, मेरा पुत्र, मेरा परिवार वह भी तेरी परीक्षाओं की तपती धूप से ना बच सका. फिर भी मैंने तुझसे उप्फ तक ना की. मेरी तुझपे ना तो आस्था कम हुई और न ही भक्ति. मैंने कभी किसीको भी तेरी भक्ति करने के कायदे नहीं बताये. सबको अपने तरीके से तेरी अर्चना करने दी कभी उनके तरीकों पर मैंने कोई टिप्पणी या रोक-टोक नहीं की, अपितु प्रेरणा देकर सदैव आगे ही बढ़ते रहने की सलाह दी. तेरे प्रति मेरी इस भक्ति को भी सैकड़ों इम्तिहानों से सदैव गुज़रना पड़ा. ऐसा करते-करते मुझे हर-संभव अपने दिल को बहुत कठोर बनाना पड़ा. मैंने वो भी किया... उसे पाषाण बना दिया. यही सोचकर कि, यही यथार्थ है. अपने हिस्से के कष्ट तो हर किसी को स्वयं ही सहने होते हैं, वे साझा नहीं हो सकते किसी की लाख कोशिशों के बाद भी.

ऐसा करते न जाने कितने ही वर्ष गुज़र गये हैं. यूँ कहा जाए, कि कितने ही युग बीत गये तो भी अतिशयोक्ति ना होगी.

परन्तु मुझे जीवन में फिर भी शीतलता का कोई नामोनिशां दूर-दूर तक नहीं दीख पड़ा. आज भी जीवन तपता हुआ मरुस्थल सा ही जान पड़ता है. उस पर से ये तपिश इतनी तीव्र है जैसे शरीर को सीधे राख में ही परिवर्तित कर देने पर आमादा हो. सब कुछ अस्थिर, अव्यवस्थित, दिशाहीन सा दिख रहा है. अनायास ही हृदय ये प्रश्न कर उठता है कि आखिर कब तक...कब तक... उसे यूँ ही तलाशते रहना होगा? और तलाश.... भी किसकी?

यह नहीं कि आज अराधना में श्रद्धा नहीं है. श्रद्धा तो है ही. विश्वास भी है पर शायद उतना ही अविश्वास भी है. कैसा विरोधाभास है यह, एक ओर विश्वास है परन्तु दूसरी ओर.... ऐसा महसूस हो रहा है जैसे अचानक से सैकड़ों कीट सड़े पर, भोज करने आ गये हों. मन क्लान्त है, हृदय अधीर है परन्तु कुछ है जो कह रहा है कि तू है कहीं.... अनदेखा....अनछुआ. यह सारी भक्ति केवल मात्र तुझ अनदेखे के लिए है. तेरे उसी एक अदृश्य स्पर्श के लिए ही तो की थी मैंने, सबने, यह भक्ति, वो तेरा शीतल स्पर्श जो मेरी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कर मुझे धन्य कर देगा. बस इसी एक आशा में तो आज भी मेरा यह शीष अब भी झुका हुआ है तेरे समक्ष. तेरे दिये हुए हर झंझावात को, हर तपिश को इसी विश्वास के साथ सहन करता आया हूँ कि इसमें मेरा ही हित निहित है. परन्तु सहनशक्ति अब जवाब देने लगी है, आशा की किरणें अब लुप्तप्राय सी हैं. मेरे कष्ट से तुझे भी तो कष्ट होता होगा!!! यह सोच कर मन और विचलित हुआ जा रहा है. मैं अपने राख बनते शरीर के आखरी कतरे तक यूँ ही

तेरा इंतज़ार करूँगा किन्तु, अब लगने लगा है मेरी भक्ति यूँ ही निष्फल रह जाएगी.... तेरे स्पर्श से विहीन ही... अतृप्त... ही रह जाएगी. हाँ मेरी यह भक्ति...मेरी निष्फल भक्ति.....



4

ज़ालिम तहज़ीब

बचपन में माता-पिता ने हमें तमीज़ की ऐसी घुट्टी पिलाई कि तनिक सी भी बदसलूकी, किसी के भी साथ करने के नाम से ही रूह कांप उठती है। मित्रों और फिल्मों से प्रेरित होकर कभी किसी को यदि “तू” कहकर संबोधित कर देते तो माता जी डांट-डांटकर दिन से रात कर देतीं, “साहबज़ादे! अब आप तू-तड़ाक पर भी उतर आये! यदि इस घर में रहना है तो यह बदतमीज़ी नहीं चलेगी।”

अब आलम यह है कि छोटे हों या बड़े, सभी को आप-जनाब से ही संबोधित करते हैं. घर के लोगों के लिए तो, यह एक सामान्य सी बात है, परन्तु बाहरी लोग हमें ऐसे घूर कर देखते हैं मानो हम किसी दूसरे गृह के प्राणी हों. उन नज़रों में कभी हैरानी होती है तो कभी हमारी इस संभ्रांत बोली को लेकर परिहास. कभी-कभी तो कुछ लोग हमें भृकुटियाँ चढ़ाकर ऐसे घूरते हैं मानो हमने कोई घोर-अपराध ही कर दिया हो उन्हें “आप” से संबोधित करके.

तहज़ीब और तमीज़ के पाठ के अलावा हम मेकेनिकल इंजीनियरिंग से स्नातक भी हैं. इसमें चार चाँद लगाने के लिए हमने डिज़ाइन में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त कर एक नामचीन बहु-राष्ट्रीय कंपनी में उच्च पद भी हासिल कर लिया. कंपनी ने हमारी पदस्थापना दक्षिण भारत के जाने-माने आई-टी शहर बेंगलोर में कर दी. यह शहर देश की औद्योगिकि राजधानी के नाम से भी जाना जाता है. तमाम बड़ी-बड़ी कंपनियों के दफ्तर यहां होने के कारण विदेशों से भी काफी तादाद में लोग यहां आकर बस गये हैं. शायद यही वजह है कि यहां अधिकतर लोग अंग्रेज़ी भाषा का ही प्रयोग करते हैं. हांलांकि क्षेत्रीय लोग अभी भी “कन्नड़” भाषा बोलते ही दीखते हैं, पर ऐसा लगता है कि उन्हें भी अंग्रेज़ी के प्रयोग से कोई परहेज़ नहीं है.

ऐसी स्थिति में उत्तर भारत से आये हुए लोग हिन्दी में गपियाने को तरस से जाते हैं. शुरू-शुरू में हमें भी हिन्दी में बात करने की बेहद तलब होती थी, कहीं कोई हिन्दी भाषी मिल जाता तो शुरू हो जाते. थोड़ा परिस्थितियों में स्वयं को ढालते हुए हम भी वैसे ही बात करने की भरसक चेष्टा करते, “और भैया....कैसे हो भैया....वगैरह- वगैरह”. उसपर कोई यू.पी वाला मिल गया तब तो सोने में सुहागा “काये भैया हमारा जिला के हो का?” थोड़ी देर तो हम किसी तरह हिन्दी के लालच में ऐसे ही बात करने की भरसक चेष्टा करते पर फिर वापस अपनी तहज़ीबी जुबां पर आ जाते. पहले-पहल तो लोग हमसे खुश होकर बात करते दीखते पर थोड़ी ही देर बाद ऐसा प्रतीत होता जैसे वे हमसे पिंड छुड़ा कर भागने के बहाने ढूँढ रहे हैं. हम समझ ही ना पाते की मसला आखिर है क्या? अन्ततोगत्वा एक दिल्ली वाले ने आखिर अपने ट्रेडमार्क अंदाज़ में हमें समझा ही दिया, “क्यों बे!! ये आप-आप क्या लगा रखा है? जब हम दोनों ही सेम एज हैं, तो तू कहकर क्यों नहीं बात करता बे.” तब जाकर हमारे नयन चक्षु खुले और हमें यह समझ में आया कि सारा माजरा आखिर है क्या?

दरअसल नौकरी लगने के बाद हम अपनी तहज़ीबी जुबां का और भी ख़ास ख़याल रखने लगे. सहकर्मियों को तो छोड़ो

अर्दली तक से आप जनाब कहकर पेश आते थे. सोचते कि इंसान को सिर्फ उसके ऊँचे ओहदे से ही नहीं अपितु उसकी उम्र का लिहाज व उसके काम को भी इज्जत बखशी जानी चाहिए. मगर हमारा यह बर्ताव हमारे साथियों को बड़ा ही नागवार गुज़रता. उन्हें लगता कि हम आप संबोधित कर उन्हें उनकी बढ़ती उम्र की याद दिला रहे हैं या शायद स्वयं को उम्र में उनसे छोटा जताने की कोशिश कर रहे हैं. किन्तु, इस नतीजे तक पहुँचने में हमे थोड़ा वक़्त लगा, कारण है हमारी सोच.... वह इतनी नकारात्मक जो नहीं है. कुछ दिन तक तो उनकी नाराजगी को मित्रता का अलग अंदाज़ समझते हुए दिमाग से झटकारते रहे. सोचते थे कि ये लोग अन्य दोस्तों की भांति हमसे भी ऐसी औपचारिक भाषा की उम्मीद नहीं रखते, इसीलिए हमे बार-बार "अपनी पे" आ जाने को कहते हैं. यह सोचकर पहले तो हम प्रसन्न हुए, परन्तु शीघ्र ही हमे यह समझ में आ ही गया कि यह बंधु-गण हमारी तरफ दोस्ती का हाथ नहीं बढ़ा रहे हैं, अपितु हमारे लिए नाराजी व तिरस्कार की मंशा रखते हैं. उन्हें हमारे अति सहज हाव-भाव में भी, खुद के लिए हीनता ही दिखाई पड़ती. हमे लगता शायद उनका परिवेश अलग रहा है इसलिए यह ऐसा सोचते हैं. उनकी परवरिश और संस्कारों पर भी हमे थोड़ी दया आती. हम सोचते कि यह बेचारे भी आखिर क्या करें. इनमे से ज़्यादातर लोग तो

निम्न माध्यम वर्गीय परिवारों से ही आये हैं, जो शायद हालात के मारे हों और अभी भी इस तरह की संभ्रांत भाषा से अनभिज्ञ हों.

कभी लगता कि यह बेचारे तो बचपन से ही न जाने किन-किन परेशानियों से जूझे होंगे. आखिर हमारे समाज में फैली कुरीतियां भी तो इंसान को ऐसी न जाने कितनी गलतफहमियों से भर देती हैं. जिसमें लगातार समय और उम्र का बोध माता-पिता व्दारा बच्चों को कराया जाता है. बेटा समय से पढ़-लिख ले, लाइफ बन जाएगी. बेटी हुई तो समय से शादी कर ले, तेरी लाइफ सेट हो जाएगी. समय से नहीं किया!! तो जीवन बर्बाद हो जायेगा, सब काम बिगड़ जायेगा. क्या बिगड़ जायेगा? किसीको नहीं पता.... परन्तु ऐसे शब्द बोल-बोल कर वे बच्चों के दिमाग ज़रूर बिगाड़ देते हैं. शायद यह भी एक कारण है जिससे मनुष्य तमाम भ्रांतियों का शिकार हो शिष्ट और अशिष्ट का अंतर भूल जाता है. अब जो बचपन से ही इस तरह के डर, शोषण और व्यंग्य बाणों से पीड़ित रहा हो उसे तो, मीठी भाषा भी ज़हर बुझे बाण सी ही प्रतीत होगी ना. उसे तो तहजीबी भाषा ताने जैसे ही कानों को बीन्धेगी. यह सोच कर हमने अपना मन उनकी तरफ से खट्टा होने से रोका, और पुनः उनके प्रति संवेदनशील हो गये.

पर नहीं....अब और नहीं... ना जाने क्यों यह अहसास हो रहा है यह सत्य नहीं है. यह सब लोग अब तो कम से कम, हालातों के मारे नहीं हैं. यह सब अच्छे-अच्छे पदों पर आसीन बदतमीज़ लोग हैं. इन्हें सिर्फ बॉस व नौकरी का ही डंडा तमीज में रखता है. यह असंवेदनशील मनुष्य हैं जिन्हें एक-दूसरे के साथ छिछोरापण करके ही प्रसन्नता प्राप्त होती है. इनका गौरव तू-तड़ाक तक ही सीमित है. यह बहुत देर तहज़ीब का खोल ओढ़कर नहीं रह पाते हैं और इसीलिए किसी भी हमउम्र से तहज़ीबी जुबां सुनते ही बिफ़र पड़ते हैं.

खैर हमारे आदर्श और सीख तो हमे इनके स्तर तक गिरने की अनुमति नहीं देते पर हमने भी अब ज़्यादा मित्र बनाने से तोबा कर ली है और यही सोचकर हम खुश हैं की इसीमें हमारी खुशी है. आज हमारे मित्रों की गिनती कम ज़रूर है, परन्तु हम फिर भी खुश हैं क्योंकि जो मुंह से भी दरिद्र हो उससे मित्रता कैसी. मां से सदैव सुना था “मुख की दरिद्रता सबसे बड़ी दरिद्रता होती है.” यह कहावत आज समझ में आई है. आज हमें अपने चारों तरफ सिर्फ दरिद्र ही दरिद्र नज़र आते हैं. हाँ जो हमें स्नेह और सम्मान से संबोधित करते हैं हम उनसे आगे बढ़कर दोस्ती करने में बिलकुल नहीं हिचकिचाते. परंतु, ऐसे लोग चुनिन्दा ही मिलते हैं.

यही वजह है कि आजकल हम स्वयं गप मारने के बजाये लोगों को बतियाते, गरियाते देख कर दूर से ही आनंद लेते हैं. ऐसा नहीं है की हम मूक हो गये हैं.... जब कभी किसी को उकसाना होता है तो अपनी तहजीबी जुबां का जुमला उसकी और उछाल कर फिर मजे लेते हैं. उसके व्दारा होती अजीबोगरीब प्रतिक्रियाएं देखकर. कुछ हमारी बोली कापी करके हमारी नकल उतारते हुए हमारा परिहास उड़ाने की कोशिश करते हैं, तो कुछ.... सोचते हैं कि हमें हमारी गाली वापस कर दें, हमारे जैसे बोलकर और कुछ... वो तो बहुत ही गुस्सा हो जाते हैं.

ऑफिस की दारु पार्टी में बम्बई के एक सज्जन आखिर टुन्न होकर हमसे बोल ही दिये, “क्या भाई ! क्या तुम मंदाग्नि के शिकार हो, हैं....? ऐसी बाबा आदम के ज़माने की भाषा क्यों बोलते हो, इससे उबरो भाई”! हम समझ गये थे कि यह सज्जन, ज़रूर, मंदाग्नि के शिकार हैं. सो उस दिन ठान ली कि अब से घर के बाहर हम केवल अंग्रेज़ी ही बोलेंगे. सच में अंग्रेज़ी क्या अद्भुत भाषा है, सबको प्रसन्न कर देती है. इसमें बात करो तो सब खुश और खुद को सम्मानित महसूस करते हैं. सबका स्टेटस इसके उपयोग से और निखर उठता है चाहे वे टूटी-फूटी बिना व्याकरण की ही क्यों ना बोलें. आखिर बोल तो अंग्रेज़ी ही रहे हैं ना. हम

भी खुश हैं क्योंकि अब हमें भी तू और आप के संबोधन का कोई सरदर्द नहीं रहा है. सारे के सारे “यू” ही होते हैं. खैर अब हम भी इसके आदी हो चुके हैं. फिर भी गाहे बगाहे ऐसे वाक्यात अब भी हमारे साथ हो ही जाते हैं.

मित्र तो वैसे हमारे बहुत नहीं हैं क्योंकि मूर्खों की जमात में शामिल होने के लिए हम पूरे के पूरे बेवकूफ तो नहीं बन सकते हैं ना. पर हाँ, अब जीना काफी आसान हो गया है. अब हमें अपनी भाषा में बात करने के कीड़े नहीं काटते. हम अब उन चंद लोगों से ही हिन्दी में बात करते हैं जो हिन्दी को सम्मान दे सकें. मज़े की बात तो यह है कि जब से हमने यह निश्चय किया है उसके बाद से ही हमें ऐसे बहुत से लोग मिलने लगे हैं जो न सिर्फ हिन्दी प्रेमी हैं अपितु उसका समुचित सम्मान भी करते हैं. गौरतलब है कि उनमें से ज़्यादातर लोग अहिन्दी भाषी हैं या विदेशी हैं. जो भी हो हमें अपनी भाषा पर और अपनी तहज़ीब पर गर्व है.



5

गुलाम

गुलामी और कायरता शायद एक-दूसरे के निकट सम्बन्धी हैं. एक बार आदमी गुलाम बन जाये तो कायरता स्वयं उसके पास टहलती हुई आ जाती है. वह भी इस कदर शरीर में घुसपैठ कर लेती है की जिसकी कोई हद ही नहीं होती. फिर आदमी डरपोक होता चला जाता है. डंडे का डर एक बार आत्मा से अगर जोंक की तरह चिपक गया तो फिर वही नचाता है मनुष्य को. आदमी फिर सोचता भर है

कि एक दिन वो भी अपनी मर्ज़ी का मालिक बनकर खुलकर जियेगा, परन्तु, वह दिन उसके जीवन में कभी नहीं आता क्योंकि वह कायरता के इतना अधीन हो जाता है कि उसकी मर्ज़ी वही हो जाती है जिसके अधीन वह आज तक सब कुछ करता आया था. अर्थात् उसकी मर्ज़ी और उसकी शख्सियत एक दूसरे में शरीक हो जाती है. डायस पर बैठा मैं इन्हीं विचारों में गोते लगा रहा था....कि सहसा.... मुझे अहसास हुआ कि बच्चों की प्रार्थना समाप्त हो गयी है. स्टेज पर बैठे लोगों की हल्की फुसफुसाहट से मेरी सोच को भी अल्पविराम लगा. मैंने नज़रें उठायीं तो पाया कि सारे छात्र चिलचिलाती धूप में अब भी खड़े हैं. उन्हें शिक्षकों से अभी अपनी-अपनी कक्षाओं में जाने का आदेश नहीं मिला है जिसका वे बड़ी बेसब्री से इंतज़ार कर रहे हैं. परन्तु, यह क्या....पीछे की कतारों के छात्रों के बीच कुछ तेज़ गतिविधि होती सी नज़र आ रही है. फिर देखा कुछ बच्चे अपने एक सहपाठी को उठा कर भीतर ले जा रहे हैं.

मैंने प्रिंसिपल साहब की ओर देखा तो पाया कि वे पहले ही की तरह मुस्कराते हुए बिना इस घटना से विचलित हुए शान से स्टेज के ऊपर लगे मंडप और पंखों के बीच बैठे हैं, जैसे कुछ हुआ ही न हो. सच पूछो तो जिस ऊंचाई पर हम बैठे थे, वहां से हमें सब कुछ स्पष्ट दिखाई दे रहा था,

परन्तु धूप में घंटों खड़े रहकर दो-तीन छात्रों का बेहोश होना तो गर्मियों में आम बात होती है. आखिर इसमें कौन सी नयी बात हुई जो कार्यक्रम में बेवजह व्यवधान डाला जाए. प्रिंसिपल साहब की इस दिखावटी मुस्कराहट के पीछे साफ़ दिखाई पड़ रहा था कि उन्हें अन्दर ही अन्दर मूर्ख छात्रों पर बहुत गुस्सा आ रहा है. कहीं उनके इस सुव्यवस्थित प्रोग्राम के रंग में भंग ना पड़ जाए. तभी मेरा ध्यान कुछ अन्य बच्चों की तरफ भी गया जो किसी तरह से अपने आप को सँभालने की कोशिश में डगमगा रहे थे. कुछ को डर था कि यदि वो गिरे तो चोट के साथ-साथ मैडम की डांट भी मिलेगी, प्रसाद स्वरूप. हाँ कुछ शरारती व मैडमों के फेवरिट बच्चे बेहोश हो जाने का नाटक बखूबी कर धूप से बचने का फायदा उठाते हुए आज भी नज़र आ रहे हैं, बिलकुल वैसे ही जैसे तब उठाते थे, जब मैं यहां पढ़ता था. बहाने कैसे बनाये जाते हैं यह पाठ भी तो मैंने इसी स्कूल में सीखा था. साथ ही यह भी सीखा था कि मास्टर्स की चमचागीरी कर फायदा कैसे उठाया जाता है. यह सब कुछ इसी स्कूल ने मुझे सिखा दिया था.

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि इतने वर्षों में भी, इस स्कूल में कुछ नहीं बदला. बदला है तो सिर्फ़ चीफ़-गेस्ट....यानी मैं. मैं खुद ही पर मुस्करा पड़ता हूँ स्वयं को

चीफ़-गेस्ट की गुदगुदी गद्दी पर बैठे हुए महसूस करते हुए. अजीब सी खुशी मेरे बदन में सिहरन उत्पन्न कर रही है. मैं इसी स्कूल का पूर्व छात्र हूँ. आज जब बड़ा सरकारी अफसर बनकर इसी शहर में पदस्थापना पर आया तो न जाने कहाँ-कहाँ से आथित्य सत्कार के आमंत्रण आने लगे. बहुत से लोगों को मैंने काम की अधिकता का बहाना बनाकर टाल दिया, परन्तु जब अपने ही स्कूल का निमंत्रण देखा तो कहीं अंदर से हूक सी उठी और मैंने वहाँ का चीफ़-गेस्ट बनना स्वीकार कर लिया. मेरी स्वीकारोक्ति की देर थी कि अगले ही दिन छपा हुआ निमंत्रण पत्र मेरे ऑफिस आ पहुँचा.... जिस पर बड़े-बड़े अक्षरों में मेरे नाम के साथ लिखा था कि, “आप आयें और हमारे छात्रों का मार्गदर्शन कर हमें अनुग्रहीत करें”.

निमंत्रण पत्र पर लिखा वाक्य पढ़कर सहसा ही मुझे हंसी आ गयी. क्या ऐसे मार्गदर्शक कर्तव्य बच्चों का कि, “बच्चों अधिकारियों के तलवे चाट-चाट कर ही प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है” या यह बताऊँ कि, “अपना उल्लू साधना हो तो बाँस की हर ग़लत और बेवकूफी भरी बात की भी बेतहाशा तारीफ़ करनी चाहिए”. खैर आज मैं क्यों अपना माथा ठोक्, मुझे तो अपनी पीठ थपथपानी चाहिए. मैं ही जानता हूँ कि कैसे मूर्खों की चापलूसी बिना मुँह बिगाड़े

करते-करते आखिर मैं इस मुकाम तक पहुँच ही गया हूँ, जहाँ पहुँचने का सपना आँखों में लेकर, बहुत से लोग बिना कुछ पाये ही खुदा को प्यारे हो जाते हैं. आज के ज़माने में अच्छा काम करने वालों को नहीं बल्कि बॉस की रग पहचानने वालों को ही तरक्की मिलती है. जिसका जीता जागता उदाहरण मैं स्वयं हूँ. मुझे गर्व हुआ अपनी इस टुच्चई पर. हाँ सही है कि मैं चंद लोगों की गुलामी करता हूँ. बेहद करता हूँ. तो क्या हुआ. इतने सारे लोगों पर मेरा दबदबा तो है. यह निमंत्रण पत्र भी तो उसीका नतीजा है.

सभा से पहले मैंने अपनी उदारता दिखाते हुए प्रिंसिपल साहब से मैदान में सरकारी खर्चे पर बच्चों के लिए पंडाल लगवा देने की पेशकश भी की थी. पहले तो उन्होंने सख्ती से मना कर दिया. फिर लपेटते हुए बोले अरे बच्चों को मजबूत होना चाहिए तभी तो आप की तरह उच्च पदों पर आसीन हो पावेंगे. उनके उस सख्त अंदाज़ से आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो गये थे और बचपन की वो याद ताज़ा हो आयी थी जब उन्होंने मेरा कान मरोड़ा था. मैंने आहिस्ता से अपने कान पर हाथ फेरते हुए सोचा - पंडाल लगे या ना लगे, मुझे क्या. मैं तो इस स्कूल में अपनी सफलता का जश्न मनाने और सफलता के झंडे गाड़ने आया हूँ, वो भी खासकर इस खूसट से अपना स्वागत करवा के. भाड़ में

जाए छात्रों का हित-अहित. यह तो इनकी नियति है. धूप सहते रहना और घंटों मुझ जैसे मुख्य अतिथियों का अनर्गल भाषण सुनना व करतल ध्वनि से जताना कि वे उनकी फ़िज़ूल की बातों से कितना उपकृत हो रहे हैं. मैं आनंद-विभोर धारा प्रवाह अपनी बेसिर-पैर की फेंकते हुए सोच रहा था कि देखो मैं आज आज़ाद हूँ. इन फटीचर गुलामों से मैं कितना ऊपर उठ गया हूँ. तभी ऑफिस के फोन की घंटी मेरे मोबाईल पर बज उठी. कॉल लेते ही उधर से आवाज़ आई कि बड़े साहब सपरिवार दौरे पर आ रहे हैं. उनके ठहरने और घूमने के सारे इंतज़ाम मुझे ही करना है और उनकी प्रोटोकाल पर भी जाना है. मैंने फटाफट अपना भाषण समाप्त किया और बिना नाश्ता किये व बिना एक भी मिनट गंवाये तुरत साहब की अगवानी के लिए दौड़ पड़ा.



6

घमासान

आज कालेज में समूह चर्चा है. यह स्पर्धा प्रति माह आयोजित होती है जिसमें सम-सामायिक मुद्दे उठाये जाते हैं. छात्र इसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते हैं. यह मंच छात्रों में बड़ा लोकप्रिय है. शुरू-शुरू में मैं भी इस स्पर्धा में खूब जोश-खरोश से हिस्सा लेती थी. परन्तु, फिर ऐसा लगने

लगा कि यह समूह चर्चा कम और भेड़ सम्मलेन अधिक है क्योंकि चर्चा के दौरान लोग मुद्दे पर कम, मुद्दे के बाहर की बात ज्यादा करते नज़र आते थे. कभी-कभी तो छात्र व्यक्तिगत आरोपों-प्रत्यारोपों जैसी टुच्ची बातों तक आ जाते थे. यह वाक्ये उनकी तंगदिली का इतना बड़ा सबूत थे कि इस बार मैंने दर्शकदीर्घा में बैठना ही मुनासिब समझा.

इस बार भी चर्चा शुरू होने के कुछ ही देर बाद वही पुरानी जैसी स्थिति फिर बन गयी - यानी कौवा कांव-कांव जैसी स्थिति. समूह के सभी प्रतिभागी अपना-अपना राग अलाप रहे थे. सभी असल मुद्दे से भटके हुए थे. कोई भी किसी की बात सुनने व समझने को कतई तैयार नहीं था. दर्शक होने के बावजूद भी मेरा मन सर पकड़ कर अपने बाल नोच लेने को कर रहा था.

समूह चर्चा का आज का मुद्दा था भारत में घटती आई-टी नौकरियों की वहनीयता. परन्तु, चर्चा करने वाले छात्रों ने उसे आरक्षण के मुद्दे में परिवर्तित कर दिया. फिर वह आरक्षण से भ्रमित होकर मनचाहे कालेजों में दाखिला ना मिल पाने के क्रंदन में तब्दील हो गया. मज़े की बात तो यह थी कि दर्शक भी उनके इस क्रंदन में शामिल होकर

उसका हिस्सा बनते गये. बस हम जैसे इक्का-दुक्का फ़िज़ूल लोग ही थे जो उसे वापस सही दिशा में लाने की भरसक कोशिश में लगे थे. पर हमारी आवाज़ उन तेज़ चीखती आवाज़ों के बीच ऐसे दब गयी जैसे नक्कार खाने में तूती की आवाज़.

मैंने निर्णायकों की ओर देखा. उनके उतरे हुए चेहरे देख कर मुझे अंदाज़ा लग गया कि ये बेचारे भी बेबस हैं और मेरी ही तरह दयनीय स्थिति के शिकार हैं. जो भी हो तनिक ढाढस बंधा कि मैं अकेली नहीं हूँ. कुछ और भी लोग हैं जो मेरी तरह इस मूर्ख-सम्मलेन से व्यथित हैं. उनकी स्थिति मुझसे भी ज्यादा दयनीय थी क्योंकि उन्हें, इनमें से किसी एक, महामूर्ख को ना चाहते हुए भी, पुरस्कार देने की मजबूरी जो थी.

सबसे ज्यादा व्यथित करने वाली बात तो ये है की इस तरह की चर्चा सिर्फ कालेज या विश्वविद्यालयों तक ही सीमित नहीं है अपितु, देश के दिग्गज एवं वरिष्ठ पत्रकार, वैज्ञानिक, नेता, साहित्यकार, व गुणी जन भी इसी तरह की अनर्गल और निरर्थक बहस प्रतिदिन कर रहे हैं जिसका असलियत से कोसों दूर तक कोई वास्ता नहीं है. सब

विशेषज्ञ सिर्फ जुबानी घमासान में एक-दूसरे को नीचा दिखाने में व्यस्त हैं. असली मुद्दे की सुनवाई कहीं नहीं है. बस घमासान मचा है. हर व्यक्ति दूसरे पर जुबानी तलवार ताने खड़ा है. नीचा दिखाने की इस जंग में असली मुद्दे लहुलुहान होकर कब के दफन हो गये हैं, किसी को भी मालूम नहीं, और न ही कोई मालूम करना चाहता है.



7

विष

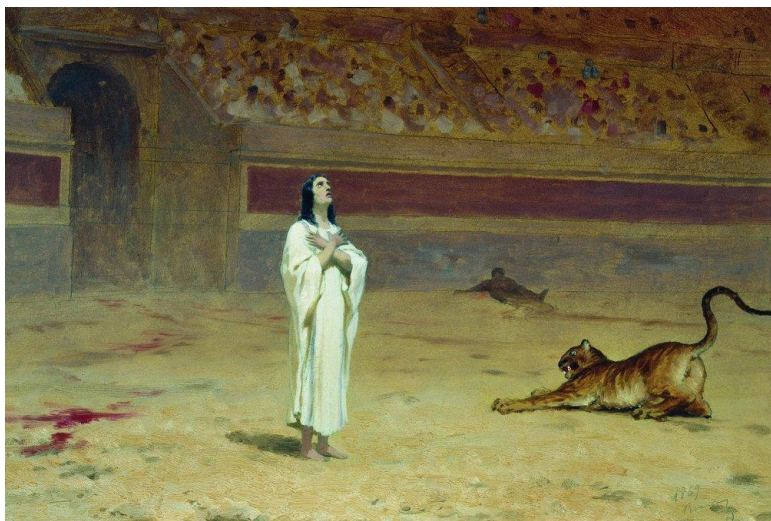
खिड़की से बाहर झांकते हुए मालूम नहीं कितने घंटे बीत गये. पता नहीं.... घंटे बीते भी हैं या सिर्फ चंद मिनट ही हुए हैं? जाने क्या हो गया है मुझे. हर लम्हा, वर्षों सा प्रतीत होने लगा है. मैं फिर बाहर झांकने लग जाती हूँ. मैं खुद भी नहीं जानती कि मैं क्या ढूँढ रही हूँ, इस शून्य में. शायद कुछ भी नहीं. बाहर है भी क्या? सिवाय वृक्ष, घास और चिड़ियों के. मैं शायद उन्हीं में अपनी खुशियां ढूँढने की निरर्थक चेष्टा कर रही हूँ.

शायद वह बतख दम्पति और उनके पीछे भागते उनके नन्हे-नन्हे चूजे दिख जायें. हलकी सी स्मित रेखा ओठों पे आ गयी, उनकी याद करके. यही एक दृश्य है जो मुझे तनिक दिलासा देता है. मुझे भी मेरे अपनों की, दूर ही सही, होने का अहसास तो दिलाता ही है.

परन्तु आज तो वे भी कहीं नज़र नहीं आ रहे हैं. शायद रूठ गये हैं मुझसे, मेरे भाग्य की तरह ही. सोचते हुए मैंने आँखें मूंद लीं. मैं वापस आकर कमरे के उसी एक कोने में बैठ गयी हूँ. हाँ अब यही कमरा मेरी दुनिया है. मेरी विषैली दुनिया जहाँ केवल व्यथा और परेशानियों के काले नाग फन फैलाये मेरी ओर घात लगाये बढ़ रहे हैं और मैं असहाय सी बंधी हूँ इस चार-दीवारी के बीच जहाँ से निकलने का कोई भी मार्ग मुझे नहीं सूझ रहा है. हाथ-पैर होने के बावजूद मैं स्वयं को कितना अपंग महसूस कर रही हूँ.

बस एक यही खिड़की मेरी अंतिम उम्मीद है. कुछ ताज़ी हवा जो संजीवनी बनकर मेरी रुह को जिंदा रखे है, इस खिड़की से ही तो मुझ तक आती है. परन्तु, रात के पसरते अंधेरों के साथ अब मेरा जीवन भी अंधकारमय होता जा रहा है. अँधेरे का यह विष मेरी आँखों से हलक में उतरता

जा रहा है. मैं विवश हूँ यह विषपान करने को. यह जानते हुए भी कि यह विष मुझे मेरी हर उम्मीद से कोसों दूर ले जायेगा. मजबूर हूँ मैं, यह विष पीने को. ज़िन्दगी का प्याला हाथ में लिए खड़ी हूँ कलांत सी, अकेली इस अँधेरे रूपी विष को भोगने को मजबूर, मैं, आज की मीरा.



8

ग्रहण

दुख और व्यथा की पराकाष्ठा वो होती है जब आँखों से आँसू तो बहें परंतु दुःख की अभिव्यक्ति करने के लिए न ही शब्द शेष बचे हों और ना ही उर्जा. कैसा नज़ारा देख रही हूँ मैं? मैं हूँ, धरती मां जिसने अपने बहादुर पुत्र को कटे पेड़ सा गिरते देखा है. उस वीर पुत्र को जिसने दुश्मनों के दांत खट्टे करते हुए भी सारी गोलियां अपने सीने पर झेलीं, परन्तु आखिरी सांस तक हिम्मत न हारी थी. किन्तु, मैं, एक असहाय मां, केवल अपने उस वीर पुत्र की निष्क्रिय

होती देह को बिना कुछ कहे, सिवा अपलक देखते रहने के, कुछ भी नहीं कर पायी थी. मेरे मुंह से निकलती आह कहीं दूर सुरक्षित बैठे लोगों के कानों तक ना पहुँच पाई थी. मेरा निरीह दम तोड़ता पुत्र तमाम सुंदर सपने अपनी आँखों में संजोये, मेरी ठण्ड से ठिठुरती बर्फीली छाती में सदैव के लिए आँखें मूंद कर मेरी गोद में सो गया था.

मेरा वो पुत्र जिसने जीते जी कभी दुश्मनों से हार नहीं मानी, वही आज सन्नाटे में चुपचाप पड़ा है. उसके घर में अब शायद कभी रौशनी ना होगी. कभी शायद चूल्हा ना जलेगा. कितने सपने संजोय थे उसने. जंग जीतकर जब घर लौटूंगा तो अपनी नन्ही गुडिया जैसी बेटी को गोद में उठाकर घंटो उसके साथ खेल-खेलकर सारी कसर पूरी कर दूंगा. पिताजी और मामा-चाचाओं को अपनी बहादुरी की गाथाएं सुनाकर उनकी छाती चौड़ी कर दूंगा. बहिन की सगाई पर तो कोई भी कसर ना होने दूंगा. भाई को नया लैप-टॉप लेकर भी इस बार दे ही दूंगा. और पत्नी, जो सबसे बड़ी हकदार है उसके प्यार और सम्मान की, उसे बाहों में भरकर उसकी आँखों के तमाम आंसू पोंछ कर, अपनी वर्दी और टोपी उसे पहना कर उसकी फोटो खींचकर अपने कमरे

मैं सजाऊंगा. क्योंकि वही तो उसकी हर कामयाबी की असली हकदार है.

जंग तो जीत गया मेरा पुत्र किन्तु अपने परिवार से आखरी भेंट के लिए वह आँखें मूंदे हुए जा रहा है आज. तिरंगे में लिपटा हुआ. छाती फट रही है मेरी. कैसी असहाय मां हूँ मैं. मुझे मालूम है कि उसकी चिता भी मेरी ही छाती पर जलेगी और साथ ही जलेंगी उसकी तमाम उम्मीदें. मैं विवश धरती मां पी रही हूँ अपने आंसुओं को इस बार फिर. हर बार की तरह.

अपने हर वीर पुत्र की आहुति के बाद ये धरती मां ऐसे ही बिलखी है, रोई है. फिर भी “मैंने” हर बार जने है उस जैसे ही हजारों वीर पुत्र. यह जानते हुए भी की उनकी खाली आँखें सदैव मेरे सीने को खड़ग बन कर चीरेंगीं. वो किसी और से गिला ना करेंगीं सिर्फ इंसाफ मांगेंगी मुझसे....हाँ सिर्फ मुझसे.

मैं धरती मां किस-किस पुत्र का जवाब दे पाऊँगी. कितने अनगिनत हिस्सों में बांटी जाऊँगी. और कितनी लकीरें मेरे

सीने को चीरेगी. मेरे पास इनमें से किसी भी प्रश्न का कोई भी उत्तर नहीं है. मेरे ऊपर युद्धों और वीरों की आहुतियों का जो ढेर लगा है. नहीं जानती कि मैं कब उससे मुक्ति पा सकूंगी? सदियों से वीरों के लहू को सोखते-सोखते मैं भी अब थक चुकी हूँ. कोई तो आये और मुक्ति दिलाये मुझे नफ़रत, हिकारत, और मृत्यु के आगोश में असमय ही समाते हुए मेरी ही इन निर्दोष संतानों से.



9

परिपक्व

बच्चों अपनी-अपनी पुस्तक निकालो और “इंसानी क्रमिक विकास” शीर्षक पाठ खोलो. यही वह नया पाठ है जिस पर मैं तुम लोगों के साथ आज चर्चा करूँगी, कक्षा में आते ही मैडम ने उद्घोषणा की. सभी छात्राओं ने फटाफट अपनी किताबें खोलीं व उत्सुकता और ध्यान से मैडम की बात सुनने लगीं. ज्योत्सना ने भी अन्य छात्राओं की भांति मैडम की बात सुनकर अपनी पुस्तक खोल ली. मैडम ने पूरा पाठ पहले बच्चों को पढ़ कर सुनाया और फिर वह उन्हें समझाने का प्रयत्न करने लगीं.

ज्योत्सना बड़े ही ध्यान से पूरा पाठ सुन रही थी, परन्तु पाठ में कई बार दोहराए यह शब्द कि “इंसान सभी प्राणियों में सर्व-श्रेष्ठ प्राणी है” से वह कतई सहमत नहीं थी. उससे भी ज़्यादा कोफ़्त उसे पाठ में लिखे इस स्पष्टीकरण से हो रही थी - “क्योंकि इंसानों की शारीरिक और दिमागी बनावट बहुत पेचीदा है इसीलिए यह सिद्ध होता है कि वही सभी प्राणियों के क्रमिक विकास के शिखर पर है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि वही सर्व- श्रेष्ठ भी है”. ज्योत्सना के दिमाग में एक अजीब सी जद्दोजहद चल रही थी. वह स्वयं को समझा ही नहीं पा रही थी कि भला बनावट के आधार पर कोई कैसे सर्व-श्रेष्ठ साबित हो सकता है? वह अपने दिमागी घोड़े दौड़ा कर अपने तर्क को शब्दों में बाँधने की कोशिश कर रही थी. उसने तो अभी तक यही जाना था कि, “वही मशीन सर्वाधिक कुशल होती है जिसकी बनावट सरल होते हुए भी प्रत्येक कार्य सफलतापूर्वक करने में सक्षम हो” आगे किताब में, मनुष्य को शिखर पर रखने के पक्ष में बहुत से उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये थे - जैसे उनके द्वारा ऊँची-ऊँची इमारतें व बड़ी-बड़ी जटिल मशीनों का निर्माण इत्यादि. उसने दिमाग लगाया की ऊँचे घर तो दीमक भी मिट्टी से बना लेती है. हो सकता है अपने कार्यों के संचालन हेतु कुछ मशीनें भी बनाती हो. क्योंकि उनका आकार ही बेहद छोटा होता है तो उसी के हिसाब से शायद

उनकी मशीनें भी छोटी-छोटी होती होंगी. हो सकता है कि इसी कारण हम मनुष्यों को वे दिखाई भी ना पड़ती हों. फिर उसे अहसास हुआ कि उनका अपना शरीर ही भला किसी मशीन से कम होता है क्या? उसने आगे गौर किया कि उनकी बनायी हुई सभी चीज़ें भी तो एकदम प्राकृतिक होती हैं जिनसे प्रकृति को कोई हानि नहीं पहुँचती. जबकि मनुष्य द्वारा निर्मित प्रत्येक चीज़ प्रकृति एवं अन्य जीवों के लिए कितनी हानिकारक होती है. धरती का वन विहीन होते जाना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है. यही नहीं मनुष्य के स्वार्थ का नतीजा वन्य-जीवों व प्रकृति सभी को भुगतना पड़ रहा है. बहुत से जीव तो लुप्त होने की कगार पर ही पहुँच गये हैं.

उसे लगा कि निरीह प्राणी तो बहुत ही थोड़े समय जीते हैं और उस अल्प समय में भी बहुत कुछ कर लेते हैं, जबकि सौ साल जीने वाला मनुष्य दिन-रात इसी कोशिश में लगा रहता है कि वह किसी तरह सतत विकास के मार्ग पर अग्रसर रह सके चाहे उसके इन स्वार्थी प्रयासों का कितना भी नकारात्मक प्रभाव पृथ्वी व अन्य जीवों पर क्यों न पड़े. इन तमाम अनुत्तरित प्रश्नों से ज्योत्स्ना का मन विचलित हो उठा. अचानक मैडम की गुस्से से घूरती हुई आँखें उसकी आँखों से चार हुईं तो उसकी सोच की गाड़ी को मानो ब्रेक

लग गया. वह सहम कर किताब में झाँकने का उपक्रम करने लगी.

सहसा मैडम ने कक्षा से सवाल किया कि यदि आप अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहे हैं, और सामने एक गृह दिखलाई पड़े तो आप उस पर बिना उतरे कैसे जान पायेंगे कि उस गृह पर जीवन है अथवा नहीं? कई बच्चों ने उत्तर देने के लिए हाथ उठा दिये. कक्षा की सबसे तेज़ और होनहार छात्रा से मैडम ने उत्तर देने को कहा, तो वह उत्साहित होकर बोली “मैडम हबल टेलिस्कोप व्दारा कई अरब किलोमीटर की दूरी से ही कितने ही गृहों को न सिर्फ देखा गया है बल्कि यह भी जानने की कोशिश भी की गयी है कि वे गृह, पृथ्वी से मिलते-जुलते हैं या नहीं. ऐसी स्थिति में यह पता लगाना कौन सा मुश्किल काम होगा कि उन ग्रहों पर जीवन है अथवा नहीं.” तभी एक दूसरी छात्रा ने पहली छात्रा की बात को आगे बढ़ाते हुए कहा - “और यदि उस गृह पर रौशनी दिखाई दे गयी तब तो यह प्रमाणित हो ही जावेगा कि वहां निश्चित ही जीवन है.” मैडम ने प्रसन्नता जताते हुए कहा - “बिलकुल सही उत्तर.”

ज्योत्सना को लगा कि ये सब तो सिर्फ विकल्प मात्र ही हो सकते हैं, प्रमाण नहीं. उसे याद आया कि एक दिन मम्मी कह रहीं थीं कि ब्रह्माण्ड की “दिशाएँ”, स्थिति व समय से

निर्धारित होती हैं। अर्थात् यदि हम ऐसी दिशा की ओर जा रहे हों जिसमें समय नहीं बदल रहा है तो यह माना जा सकता है कि उस मार्ग में आने वाला गृह भी अवश्य ही पृथ्वी से मिलता-जुलता होगा और विकास की गति भी वहां पृथ्वी जैसी ही हो सकती है। परन्तु, यदि हम समय से आगे निकल जाएँ तो संभवतः हम ऐसे गृह पर पहुँच सकते हैं जहां जीवन तो हो, पर वह जीवन पृथ्वी जैसा कतई ना हो। हो सकता है उस गृह के प्राणी अपने जीवन के लिए हवा व जल का निर्माण खुद करते हों, या उससे भी अधिक संभावना इस बात की भी हो सकती है कि वे संभावित आक्रमणों से बचने हेतु सतह के नीचे छुपकर रहते हों। आखिर ऐसे ही भविष्य की कल्पना तो हम भी कर रहे हैं। सतह के नीचे रहने से हम कितनी ही प्राकृतिक विपदाओं से एवं अन्तरिक्ष से गिरती अनगिनत उलकाओं से स्वयं को सुरक्षित रख सकते हैं।

“ज्योत्सना!!!!”, मैडम लगभग चीखते हुए बोलीं। “ध्यान कहाँ है तुम्हारा? यहां पढ़ने आती हो या दिवा स्वप्न देखने!! कहां बाहर देख रही हो? झूलों को? या बगीचे को? खड़ी होकर जवाब दो.” वह तुरंत सर झुकाकर खड़ी हो गयी। सभी छात्राएं उसपर हंस रहीं थीं। उसे गुस्सा आ गया।

सोचा अब चुप ना रहूंगी. अपनी बात मैडम एवं सहपाठिनों के आगे बोल ही दूंगी.

वो बोल पड़ी - "मैडम मैं न तो झूले निहार रही थी ना ही बगीचा परन्तु मैं भी आपके अन्य गृहों पर जीवन के प्रश्न के दूसरे ही विकल्पों के बारे में ही सोच रही थी. उसकी बात सुनकर पूरी कक्षा मय मैडम के ठठाकर हंसने लगी, मानो उसने कक्षा में कोई जोक सुनाया हो. मैडम ने किसी तरह अपनी हंसी रोकते हुए उसे बैठने का इशारा किया. ज्योत्सना का मन गुस्से से भर गया. हमेशा की तरह इस बार भी उससे शायद भयंकर भूल हो गयी थी जो अपनी बात सबको बता दी. शायद गलती उसीकी थी, उसे खुद पर बहुत क्रोध आ रहा था, क्यों वह औरों की तरह नहीं है? क्यों वह अलग सोचती है? क्या वह सचमुच उपहास की ही पात्र है? पर मम्मी तो कहतीं हैं कि उसमें विलक्षण क्षमता है और अगर वह ऐसे ही सोचती रही तो आगे चलकर ज़रूर महान वैज्ञानिकों की तरह बड़े आविष्कार करेगी.

कक्षा समाप्त होने पर मैडम ने उसे अपने पास बुलाकर समझाते हुए कहा , "देखो ज्योत्सना, यह कक्षा रॉकेट साइंस की नहीं है. इसलिए यह तुम्हारी ऊट-पटांग सोच भी सही नहीं है. ऐसी बेवकूफी की बातें सोचोगी और खोई-खोई रहोगी तो अच्छे नंबर कैसे पाओगी? उतना ही कहो व

लिखो जितना किताबों में सिखाया गया है. और हाँ ये कार्टून देखना बिलकुल बंद करो वहीं से यह सब सीख कर आ जाती हो.” ज्योत्स्ना ने उनकी बात को काटते हुए कहा - “नहीं मैडम, मैंने किताबों को पढ़ कर एवं अपने माता-पिता की बातों को सुनकर ही यह सब सीखा है, कार्टूनों से नहीं”.

“जो भी हो यह सब मूर्खता बंद करो”, मैडम कठोर आवाज़ में चिल्लायीं. वे अब तक आग-बबूला हो चुकी थीं, सो चींखते हुए बोलीं - “इन सबसे तुम कभी आगे नहीं बढ़ पाओगी. काफी बड़ी हो गयी हो, ज़रा परिपक्व भी हो जाओ. उन्नति के लिए नंबर आवश्यक हैं. जो इन फ़िज़ूल की बातों को सुनकर और कहानियों को पढ़कर नहीं मिलते. कोर्स की किताबों पर ध्यान देने से ही आते हैं. कोर्स पर ही अपना सारा ध्यान लगाओ.” ज्योत्सना ने हामी में सर हिलाया और चुप-चाप कक्षा में वापस अपनी जगह पर आकर बैठ गयी. उसने सोचा चलो अभी के लिए पुस्तक में लिखे पाठ से ही जवाब रटें जायं, जो मैडम को भी सही लगें और मुझे अच्छे अंक भी दिलायें. उसने मैडम के शब्दों को मन ही मन दोहराया और खुद से कहा चलो अब हम भी थोड़ा परिपक्व हो ही जाते हैं और वो अनजाने में ही अपनी ही सोच पर मुस्करा पड़ी.



10

शिखर

राज्याभिषेक का आयोजन समाप्त हो चुका था और उसके सामने चमचमाता हुआ राज्य-सिंघासन रखा था. आम और खास दोनों ही सभाग्रह खचाखच भरे थे. सभी विशिष्ठ जन इस अवसर पर वहां उपस्थित थे. कुछ को मेरे गद्दी पर आसीन होने का इंतज़ार था तो कुछ ईर्ष्यावश मेरी ओर देख रहे थे. किन्तु, मेरा ध्यान केवल उस सिंघासन की ओर था. इस भव्य सिंघासन को पाने के लिए मैंने क्या कुछ नहीं किया था. रण-भूमि में शरीर पर तमाम घाव झेलते हुए भी शत्रुओं के लहू से मिट्टी को कई बार तर किया था मैंने.

यही नहीं परिवार में भी अपनों से विश्वासघात के घाव और साजिशें आत्मा पर लिए मैं यहां तक पहुंची थी. उन दुखदायी बातों से स्वयं को पृथक् कर के रखना और मंजिल तक पहुंचना मेरे लिए बिल्कुल आसान नहीं था. किन्तु, साजिशों के बदले मैंने सदैव संघर्ष का रास्ता अख्तियार किया था. दिन-रात एक कर दिया था राज्य के विस्तार में, परन्तु धरती से जुड़े किसानों और मजदूरों की कभी अनदेखी न करते हुए हमेशा उनकी मित्र बनी रही. विव्दानों और ज्ञानियों को भी समुचित सम्मान दिया था.

मुझे सिर्फ गद्दारों और कायरों से नफरत थी. किन्तु, आज जब मैं स्वयं साम्राज्ञी बनने जा रही हूँ, तो न जाने क्यों मेरे कदम पीछे हट रहे हैं. सिंघासन की चमक मेरी आँखों को सुख नहीं पहुंचा रही है. इस महा-आनंद के समय में, मन न जाने क्यों विचलित हो रहा है. यह सफलता सुख नहीं दे रही है अपितु मन को बहुत अधीर कर रही है. रह-रह कर यही प्रश्न हृदय में उठ रहा है कि क्या, यही चाहिए था मुझे? क्या इसीको पाने के लिए इतना रक्तपात किया था? क्या यह ज़रूरी था?

मन कह रहा था कि यह वह ऊंचाईयां नहीं हैं जहां मैं पहुंचना चाहती थी. ऊंचाईयों को छूने की यात्रा तो यहां से प्रारंभ करनी है मुझे. लोग जिसे शिखर समझ रहे हैं, वहां

से तो शिखर अभी कोसों दूर है. अभी वहां पहुँचने में बहुत वक्त लगना है. जिसे लोग राज्य-शिरोमणि कह रहे हैं वह तो मात्र एक पड़ाव है. जो भी चाहे इस पद को हासिल कर सकता है. मैं इसे शिखर समझकर, रुक नहीं सकती. कभी नहीं. किसी तरह का कोई भी लोभ मुझे मेरी मंजिल तक पहुँचने में बाधा उत्पन्न नहीं कर सकता. मुझे अभी बहुत से कार्य करने शेष हैं. सुनहरा कल और शिखर मेरा इंतज़ार बेसब्री से कर रहे हैं. स्तब्ध सी मैं सिंघासन पर आसीन हो जाती हूँ, शंखनाद और घंटालों के तीव्र स्वरों के बीच यह सोचते हुए कि शायद सच्चा शिरोमणि बनने में अभी भी बहुत वक्त बाकी है.



11

हीरे

अरे भैया! आपने आज सुबह का ही तो समय दिया था ना. देखो मैं दौड़ती हुई इसीलिए आई हूँ, मुझे ऑफिस के लिए भी देर हो रही है. एक ही सांस में यह कहते हुए मैंने दूकानदार से प्रश्न किया - “हो गया ना मेरा काम?” “बस मैडम हुआ ही समझिये.” “अरे.... मतलब आपने अभी भी, तैयार कर के नहीं रखा उसे. जब समय दिया था तब तो.....कम से कम...” “मैडम आप ज़रा बैठिये तो, लीजिये

यह कुर्सी ... हां यहाँ. बस आपका ही काम हो रहा है, दो मिनट और, देखिये वहां वो कारीगर आपका ही हार पॉलिश कर रहा है. अरे ओ दुग्गी! ज़रा मैडम के लिए जल्दी से एक कोल्ड-ड्रिंक तो लाना दौड़कर. चल फटाफट हाँ शाबाश.”

एक हार पॉलिश कराना इतना बड़ा सर दर्द बन जायेगा मैं नहीं जानती थी. अब तक लगभग दस चक्कर लगा चुकी थी सुनार की दूकान के. जब भी आती या तो कारीगर गायब होने का बहाना या कोई दूसरा बहाना बना देता काम न कर पाने का. आज रो-धो कर मिला भी तो इतना लम्बा इंतज़ार. “उप्फ....वक्त का तो कोई मूल्य ही नहीं है इस देश में...” कोल्ड-ड्रिंक हाथ में पकड़कर धीरे-धीरे सुड़कते हुए मैं सोच रही थी. कर भी क्या सकती थी भला... सिवाय इंतज़ार के.

तभी मेरा ध्यान सुनार और उसके बगल वाले फैशन ज्वेलरी के विक्रेता की बातचीत पर गया. सुनार कह रहा था - “वाह भाई तुम्हारा फैशन ज्वेलरी का धंधा तो चमक रहा है. पर देखो तो मेरा सुनारी का धंधा तो बहुत मंदा हो गया है. सरकार की नीतियों का सबसे ज़्यादा असर हमारे ही धंधे पर पड़ा है. मैं भी अब तो सौंचने लगा हूँ की तुम्हारे साथ ही साझेदारी कर लूँ, कम से कम घर में चूल्हा तो जलेगा.” फिर वो हंसा और बोला - “यह तुम पचास का

माल हज़ार में कैसे बेच लेते हो भाई?” दूसरा दुकानदार भी हंसते हुए एक आँख दबाकर बोला - “बड़ी सीधी सी बात है भैया. मेरी फैशन ज्वेलरी के खरीददार चाहे हजारों की खरीद वाले हों पर संख्या में ज्यादा तो वही हैं ना. आकर्षक ज्वेलरी सस्ते में खरीदते हैं और वाह-वाही हीरे-जवाहिरातों जैसी पाते हैं. देखो भाई, इंसान को सुंदर दिखना है चंद घंटों के लिए और मेरे यह नकली जेवर कम खर्च में ही उनकी शोभा बढ़ा देते हैं. उनका काम भी हो जाता है और इज्जत भी रह जाती है. दोस्तों और रिश्तेदारों के बीच वे ट्रेंडी लुक भी पा लेते हैं और तारीफें भी बटोर लेते हैं. जब पॉलिश उतर जाती है तो हमें ही आधे दामों में आकर वापस कर जाते हैं. हम फिर नयी पॉलिश लगा किसी दूसरे ग्राहक को यही ज्वेलरी नयी कहकर टिका देते हैं वह भी दूने दामों में. और क्या चाहिए. ग्राहक भी खुश रहते हैं अपनी खरीददारी से और हम भी खुश होते हैं अपनी कमाई से. वैसे भी एक तो हर आदमी कोई जौहरी होता नहीं जो पत्थर और हीरे में फर्क कर पाए. पीतल भी सोने के पानी से मढ़ दो तो सोने जैसा ही चमकने लगता है. पहने हुए गहने चमकते-दमकते सब असली ही लगते हैं. फिर हर्ज़ भी क्या है, अगर सस्ते में काम चल जाए तो” सुनार ने भी उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए उसकी बात से अपनी सहमति जताई.

अब तो मुझे भी उनकी इस चर्चा में रस आने लगा था और मैं बड़े ही ध्यान से उनकी बातें सुन रही थी कि तभी मेरा हार तैयार होकर आ गया. पेमेंट करते हुए मैंने टहोका लगाया कि आगे यदि इतनी परेशानी हुई तो मैं यहां से ज़ेवर खरीदना ही बंद कर दूंगी, यह जानते हुए भी कि ऐसी फ़िज़ूल की धमकियां सुनकर इन बेशरमों के कानों पर जूं तक ना रेंगेगी.

हार सहेज, ऑटो पकड़कर मैं ऑफिस पहुंची तो देखा सेजल मेरी केबिन में मेरा इंतज़ार बड़ी बेसब्री से कर रही थी. हम ऑफिस में नाश्ता साथ में करते हैं. मुझे देखते ही बोली, “अरे इतनी देर कहां लगा दी कब से तेरी राह देख रही हूँ. अब चल जल्दी, नाश्ते के साथ एक स्पेशल खबर भी परोसनी है आज तुझे”. मैंने नाश्ता आर्डर करते ही उससे पूछा, “हां तो बता क्या कह रही थी तू?” वह अपनी आँखें मटकाते हुए बड़ी नाटकीयता से बोली - “जानती है टीम में एक नयी नियुक्ति हुई है, नाम है रामला.” “अच्छा!!! वो..., कब से ज्वाइन कर रहा है?” मैंने कटलेट का पीस मुंह में रखते हुए पूछा. “कल से ही”, सेजल मुस्कराते हुए बोली “और वो भी ट्रेनी इंजीनियर के पद पर.” मैं हताशा व आश्चर्य मिश्रित स्वर में बोली - “वो तो सिर्फ कंप्यूटर में डिप्लोमा है. मैनेजर ने उसका प्रमोशन कर उसे ट्रेनी

इंजीनियर कैसे बना दिया?" सेजल ने अपना हाथ झट से मेरे मुंह पर रखकर मेरी आवाज़ को दबा दिया. वह वहां बैठे अन्य लोगों को हमारी बातचीत का हिस्सा नहीं बनने देना चाहती थी. उसका हाथ एक तरफ झटकते हुए मैंने फिर दोहराया, "व्हाट नॉनसेंस. एक डिप्लोमा को इंजीनियर! यह कैसे हो सकता है" मेरे हाथ से फोर्क भी छूट कर प्लेट में गिर गया. मैंने सेजल से अर्थाया "क्या वह बहुत तजुर्बेदार है?" "नहीं....बिल्कुल नहीं. नौसिखिया है." सेजल ने आहिस्ता से जवाब दिया. "साल छः महीने के काम को तजुर्बा कहते हैं क्या", सेजल फुसफुसाई.

"उफ़.... मैनेजर ऐसा कैसे कर सकते हैं. यह तो अनुचित है. उसके साथ हम काम करेंगे या उसे सिखायेंगे? आधे से ज़्यादा समय तो उसके साथ यूँ ही बेकार हो जाया करेगा ऑफिस में." "हम्म....जानती हूँ", सेजल बोली. "यही वजह तो थी जो तेरा इंतज़ार इतनी बेसब्री से कर रही थी. मुझे भी सुबह से बहुत गुस्सा आ रहा है यह खबर सुनकर. पर अब कर भी क्या सकते हैं. सबको मालूम है कि मार्केट खस्ताहाल हो गया है. कम्पनी घाटे में चल रही है और प्रोजेक्ट की सीमा-रेखायें वैसी की वैसी बनी हुई हैं. गनीमत है कि हमारी नौकरी पर नहीं बन रही है, वरना कम्पनी जब चाहे नोटिस पकड़ा कर हमें बाहर जाने का रास्ता

दिखा सकती है. शायद रामला जैसों को लेने के पीछे भी यही वजह हो. चीफ की यही नीति होगी कि कम से कम तनखाह देकर ज़्यादा से ज़्यादा काम करवाएं जिससे कुछ घाटा कम किया जा सके कम्पनी का. कम लागत में सीमा रेखा के अंदर काम हो जाने का ठप्पा भी लग जायेगा.”

सेजल ले आगे कहा - “वैसे भी सस्ता और कम लागत वाला सामान बार-बार खरीदा जायेगा. इससे इन्वेस्टर और मालिक सभी खुश रहेंगे और खराबी होने पर रीप्लेसमेंट का ऑफर ग्राहकों को भी अपनी ओर खींचेगा. अब भले ही हम पर बोझ बढ़े तो क्या? हमें तो काम समय पे ही करना होगा और वह भी उम्दा तरीके से.” सेजल यह सब बोले जा रही थी पर मैं सुबह सुनार की दूकान पर होने वाली बात में खोई हुई थी. आजकल असली हीरों की न तो पहचान है ना ज़रूरत. बस जो चमके और काम निकाल दे वही हीरा. सच ही तो है मैंने सोचा, जौहरी तो हमेशा ही मुश्किल से मिलते थे पर अब तो इस नकली और इमीटेशन से भरी दुनिया ने उनकी ज़रूरत ही समाप्त कर दी है. असली-नकली का फर्क धूमिल हो गया है. नकली पत्थरों को तराशकर हीरों के जड़ाऊ जेवर बनाकर और पीतल पर सोने का पानी चढ़ाकर पेश किया जा रहा है. किसे फ़िक्र है, काम तो चल ही रहा है, बल्कि बेहतर चल

रहा है. मुनाफा तो सभी कमा रहे हैं और खुश भी हैं.
लेकिन.....असली हीरे!!! वह कहाँ हैं अब? वे तो उन नकली
टुकड़ों में कहीं गुम होते चले जा रहे हैं और इसकी परवाह
किसी को नहीं है किसीको भी नहीं....



12

तोड़ नीति

मुत्थुस्वामी सुबह से अपने केबिन में समाचार देखता बैठा था. उसका केबिन एक भव्य कमरा था जो बहुत मंहगी व कीमती चीज़ों से सुसज्जित था. अपनी बड़ी सी गुदगुदी कुर्सी पर बैठ होम थिएटर पर समाचारों में स्टॉक मार्केट का हाल देखना उसे बहुत पसंद था. पर आज सब कुछ अलग था. पहली बात तो यह कि आज रविवार था और छुट्टी के दिन ऑफिस आना उसे कतई पसंद नहीं था. दूसरे आज टी.वी पर स्टॉक मार्केट का हाल नहीं बल्कि हैपटिक्स कॉर्प कंपनी द्वारा बनाई घड़ियों के विस्फोटों की खबर वह देख रहा था. हर चैनल पर बस वही खबर प्रसारित हो रही थी. शाम होते-होते ये खबर जो मामूली विस्फोट से शुरू हुई थी, एक भयंकर तबाही का रूप ले चुकी थी.

हादसे में बुरी तरह घायल लोगों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही थी. अलस्सुबह पहले विस्फोट की खबर उसे रॉय ने फोन पर दी थी. सुबह तड़के ही जब फोन की घंटी से मुत्थुस्वामी की नींद टूटी तो वह गुस्से से आग-बबूला हो उठा था. फोन पर ही रॉय पर चिल्ला पड़ा था, “तो इसमें कौन सी बड़ी बात हो गयी, ठीक है हो गया होगा कोई हादसा”. रॉय ने उसे समझाने की चेष्टा करते हुए कहा था कि ऐसे ही कुछ वाक्यात पिछली रात भी घट चुके हैं और आहतों की स्थिति भी काफी गंभीर है. वह उल्टा रॉय पर ही चिल्ला पड़ा, “तो मैं क्या करूँ”? रॉय बोला “देखो मुत्थु घड़ी इसी शुक्रवार की दोपहर को लांच हुई है और यह हादसे, यह विस्फोट....यह कोई आम घटना नहीं है. शॉन बहुत गुस्से में है, और आज ही इमरजेंसी मीटिंग रख इस पर चर्चा करने को कह रहा था. मैं तो तुम्हें आगाह कर रहा हूँ कि तैयार रहो अब शॉन के साथ मीटिंग के लिए.”

रॉय का पूरा नाम है राजेश ओबेरॉय, परन्तु सब उसे रॉय कहकर ही बुलाते हैं. अपने चापलूसी स्वाभाव के कारण वह मुत्थुस्वामी का बड़ा चहेता है. मुत्थुस्वामी “बेलमार्क नेशनल लैब्स” का चीफ़ साइंटिस्ट है और एक तरह से लैब्स का सर्वेसर्वा भी है. आखिर बेलमार्क की स्थिति में स्थिरता लाने का सारा श्रेय भी तो उसी को जाता है. यदि ऐन मौके

पे उसने अपनी तोड़-नीति ना प्रस्तुत की होती तो उससे पहले के सभी कर्मठ और बुद्धिमान वैज्ञानिक अपने खर्चीले अनुसंधानों से बेलमार्क को पूरी तरह खुग्ग करके कब का बंद करवा चुके होते.

बेलमार्क के पूर्व चीफ साइंटिस्ट डॉ वाल्डेन जब बेलमार्क छोड़ कर गये और मुत्थुस्वामी ने उनका पद संभाला, उसी समय अन्य मेधावी वैज्ञानिकों को लगने लगा कि बेलमार्क अब पहले जैसा नाम नहीं रह जायेगा. डॉ वाल्डेन ने अपने अनोखे काम से बेलमार्क को अपनी अलग पहचान दिलाई थी. यही वजह थी कि बेलमार्क अपने समय की सर्वाधिक आधुनिक लैब में गिनी जाती था. उस लैब में जो काम होता था वह अत्याधुनिक था. डॉ वाल्डेन के मार्गदर्शन में “बेलमार्क” दुनिया के अन्य वैज्ञानिकों की सोच से बहुत आगे का काम कर रहा था. यह उन्हीं का दिमाग था कि उन्होंने जैव चिकित्सा प्रौद्योगिकी को एक बिलकुल नयी दिशा ही दे दी थी. सब कुछ बहुत अच्छा चल रहा था कि अचानक सरकार बदली और साथ ही सरकार की नीतियां भी बदल गईं.

नयी सरकार ने अपना निर्णय सुनाया तो बेलमार्क की तो जैसे रीढ़ की हड्डी ही टूट गयी. सरकार ने स्पष्ट कर दिया कि अब वे ऐसे अनुसंधान केन्द्रों का निर्वहन व खर्च वहन

नहीं कर सकती. सरकार को समझाने के वाल्डेन के सारे प्रयास विफल रहे. उन्होंने सरकार से अपने निर्णय को बदलने के लिए बहुत से तर्क पेश किये. उन्होंने यह भी कहा की तीव्रता से हो रही प्रगति पर विराम लग जाएगा और उसे यूँ अकस्मात रोक देना देश के हित में भी नहीं होगा. इस लैब में हो रहे अनुसंधानों से जन कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो रहा है. यही तो सरकार का भी एजेंडा है. परन्तु..... डॉ वाल्डेन अपने सभी तर्कों व प्रयासों में विफल रहे. भला सरकारें तर्कसंगत बातें क्यों समझें. उनकी नीतियां तो वोटों की गिनती तक ही सीमित रहती हैं. दूरगामी उद्देश्यों से उन्हें क्या सरोकार.

जब सरकार से बात नहीं बनी तो बेचारे डॉ वाल्डेन अन्य रास्ते खोजने लगे. मसलन अन्य लैब्स से साझा प्रोजेक्ट्स करने की बात एवं प्राइवेट कंपनियों से कुछ लागत लगाने की बातें इत्यादि. किन्तु बात वहां भी न बनी क्योंकि डॉ वाल्डेन कार्य करने की अपनी प्रणाली में कोई भी बदलाव करना नहीं चाहते थे और यह बात किसी भी कंपनी व लैब को हजम नहीं हो रही थी. अंततः डॉ वाल्डेन हार गये, तब उन्होंने सोचा कि शायद उनकी सोच ही पिछड गयी है और अब लैब को बचाने के लिए कोई आधुनिक विचारों वाला व्यक्ति ही इस पद पर आसीन होना चाहिए. उन्होंने अपनी

यह सोच स्वयं की सेवा-निवृत्ति ले कर सभी वैज्ञानिकों तक भी पहुंचा दी. हालांकि उनका यह निर्णय अप्रत्याशित था परन्तु, बेलमार्क से वे अपने बच्चे जैसा ही प्रेम करते थे और उसको डूबते देखना उनकी साँसों के रुकने जैसा ही था. उन्होंने सोचा “कहीं मेरी पुरानी सोच लैब को ही ना ले डूबे” सो आनन-फानन में यह निर्णय ले डाला. उनका पदभार डॉ मुत्थुस्वामी ने सहर्ष ग्रहण किया और अगले ही दिन से उनका कार्य-भार संभाल भी लिया.

मुत्थु ने कुर्सी हथियाते ही एक नयी तकनीक का एलान भी कर दिया. यह नयी तकनीक और कोई नहीं बल्कि तोड़-नीति थी. शुरू में तो सभी वरिष्ठ एवं मेधावी वैज्ञानिकों को ये एक मज़ाक लगा. परन्तु जब उन्हें इस पर ज़बरदस्ती अमल करने को कहा गया तो वे खुलकर इसके विरोध में आ गये. मुत्थु ने भी कठोर शब्दों में सबको समझा दिया कि जिसे भी परेशानी हो वो कहीं अन्यत्र काम ढूँढ सकता है, क्योंकि यहां तो अब इसी नीति के तहत काम होगा. नतीजतन बेलमार्क को ऊँचाइयों तक ले जाने वाले बहुत से वैज्ञानिक उसे छोड़ कर चले गये. पीछे बची चाटुकार और अकर्मण्य कर्मचारियों की टोली, जिनने सहर्ष मुत्थु की नीति को अपना लिया. मज़े की बात तो ये कि उसकी तोड़-

नीति सफलता के साथ चल भी निकली. परन्तु....सिर्फ कुछ वर्ष तक ही.

तोड़-नीति के अंतर्गत सभी वैज्ञानिकों को अन्य लैब्स अथवा विश्वविद्यालयों में हो रहे काम से निकले निष्कर्षों को चुराना होता था और उनका गहन विश्लेषण करके उसे ही अपनी लैब द्वारा किया हुआ अग्रणी काम बताकर अन्य कंपनियों को बेच देना होता था. बेलमार्क से फार्मूला खरीदने वाली कंपनियां अक्सर छोटी-मोटी होतीं जिन्हें आगे बढ़ने के लिये आधुनिक प्रौद्योगिकी के अविष्कारों की आवश्यकता तो होती थी, परंतु अपने स्वयं के अनुसंधान केंद्र खोलने के पैसे नहीं होते थे. वे कंपनियां खुशी-खुशी बेलमार्क से ऐसे फॉर्मूले कुछ पैसे में खरीद लेतीं. इस प्रकार बेलमार्क की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होती गयी. फिर एक दिन बेलमार्क में छप्पर फाड़ प्रस्ताव लेकर आये "शॉन हैपटिक्स कॉर्प" के मालिक शॉन रसेल. शॉन इस कंपनी को अकेले ही इतना आगे लेकर आये थे पर अब आगे का रास्ता उन्हें बहुत मुश्किल दिखलायी दे रहा था. हैपटिक्स ने कोई बड़े आधुनिक उपकरणों का अविष्कार स्वयं नहीं किया था पर शॉन का बिजनेस दिमाग न सिर्फ बहुत तेज़ था बल्कि वह ये भी जानता था कि कैसे किसी उपकरण को आधी कीमत में बनवाकर बेचा जाये, जिससे मध्यम

वर्गीय लोग भी आकर्षित हो उसे खरीद सकें और उनकी कंपनी खूब मुनाफा कमा सके.

अभी तक तो हैपटिक्स कॉर्प बहुत अच्छा व्यापार कर रही थी लेकिन जब से अन्य बड़ी कम्पनियां अपने उपकरणों में नए-नए फीचर्स देकर उन्हें बेहद कम कीमतों में उपलब्ध कराने की होड़ में लग गयीं थीं तबसे अच्छे-अच्छे व्यापारी दिमाग भी चकरा गये थे. ऐसे में हैपटिक्स कॉर्प की ग्राहकी भी मात खाने लगी थी और शॉन को अपने तारे भी गर्दिश में जाते दिखने लगे. शॉन समझने की कोशिश कर रहा था कि जल्दी से जल्दी क्या नया किया जाए जिससे बात संभाल जाए. तभी एक सहयोगी ने बेलमार्क का सुझाव शॉन को दिया. शॉन को यह सुझाव जमा तो... पर उसे शक था कि क्या वाल्डेन की अनुपस्थिति में बेलमार्क उनके लिए एक बड़ा प्रोजेक्ट कर सकने में सक्षम होगा? किन्तु, समय की कमी और बाज़ार के प्रेशर ने शॉन को यह जोखिम उठाने पर मजबूर कर ही दिया और वह बेलमार्क पहुँच गया.

मुत्थु के लिए यह उसकी अब तक की सबसे बड़ी सफलता थी. इतना सारा पैसा उसने एक साथ कभी नहीं देखा था. पर अब मुश्किल थी कि उपकरण का आविष्कार भी लैब में ही करना था. किन्तु, यह मुश्किल मुत्थु की नहीं थी बल्कि

उन निरीह वैज्ञानिकों की थी जो उसके नीचे काम करते थे, क्योंकि काम तो बेचारे वे ही करते थे मुत्थु तो दिनभर बस कुर्सी तोड़ने का ही काम करता था.

मुत्थु को रॉय ने सूचित कर दिया था कि शॉन लैब के मीटिंग हॉल में आ चुका है, और बहुत गुस्से में है. मुत्थु को मीटिंग हॉल में घुसने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी पर किसी तरह अपने आप को संयत कर वह मीटिंग हॉल में दाखिल हुआ. उसने अंदर आते ही शॉन की तरफ हाथ बढ़ाया जिसे शॉन ने नज़रंदाज़ कर अपना गुस्सा जताया. मुत्थु सीधे अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गया और सोंचने लगा कि बात कहाँ से शुरू की जाए? शॉन अपनी कुर्सी पर थोड़ा और पसर गया और कॉफी की खाली प्याली हाथ से घुमाने लगा. मेज़ की दूसरे छोर पे बैठे मुत्थु के पसीने छूट रहे थे. शॉन ने ही बात शुरू करते हुए कहा “मेरे सहयोगी मित्र ने जब आपकी अनोखी नीति के बारे में मुझे बताया, तो मुझे लगा कि आपके जैसे तेज़ दिमाग आदमी के साथ काम करना मजेदार होगा. यही सोचकर मैंने अपनी कंपनी का अनुबंध आपकी लैब के साथ किया था”. मुत्थु के रोंगटे खड़े हो गये यह सोच कर कि तोड़ू-नीति के बारे में तो उसकी समझ में कोई बाहर वाला अब तक जानता ही नहीं था, फिर इसे कैसे....?? शॉन ने बात को आगे बढ़ाते हुए

कहा “लेकिन, मैं अब बहुत निराश हूँ, मुझे अब लगता है यह निर्णय मेरी बहुत बड़ी गलती थी जो आपकी इस नीति पर भरोसा किया. लेकिन याद रहे”, वह धमकाते हुए बोला, “किसी भी अन्य की गलती की छाया मेरी कंपनी पर नहीं पड़नी चाहिए. इन हादसों के लिए मैं आपकी लैब को ही ज़िम्मेदार ठहराऊंगा, और ऐसा हमारे अनुबंध में भी लिखा है.” मुत्थु तुरंत बचाव में उतर आया और बोला, “शॉन हमारी कोई गलती नहीं... हम तो पूरी अहतियात बरत रहे थे”. शॉन ने उसकी बात बीच में ही काटते हुए कहा - “देखिये मैं भी आपके लिए प्रार्थना करूंगा कि यह गलती आपकी लैब की ना निकले”, और उठकर मीटिंग हाल से तेज़ी से बाहर निकल गया.

मुत्थु अपना सर पकड़े वहीं टेबल पर बैठा रहा फिर इशारे से अर्दली को बुलाया और तुरंत सभी वैज्ञानिकों को मीटिंग हॉल में बुलाने का आदेश देकर रॉय की तरफ मुखातिब हुआ. रॉय शॉन के बाहर निकलते ही अंदर आ पहुंचा था और अपने बचाव की तरकीब सोचने में लगा था. जल्दी ही बाकी के वैज्ञानिकों ने भी उन्हें जवाइन कर लिया जो इस प्रोजेक्ट पर उनके साथ काम कर रहे थे. रॉय क्योंकि इस प्रोजेक्ट का लीड था इसलिए उसने ही बात आरंभ करते हुए कहा - “सर हमने पूरे प्रारूप की अच्छी तरह सारी जांच

पड़ताल की थी. लैब में तो यही घड़ी बिल्कुल ठीक तरह काम कर रही थी. उच्च एवं न्यूनतम तापमान दोनों पर हमने इसे टेस्ट किया था. यह सभी स्केलों पर एकदम खरी उतरी थी. इसलिए इसमें विस्फोट होने का तो कोई कारण हो ही नहीं हो सकता.”

“तो फिर मार्केट में लॉन्च होते ही यह हादसे क्यों शुरू हो गये? कोई जादू-टोना हो गया क्या?” मुत्थु आग-बबूला होकर चिल्लाया. सभी की नज़रें रॉय के चेहरे पर एकबार फिर टिक गयीं. लेकिन रॉय ने अपनी आदत के अनुसार यह कहकर अपना पल्ला झाड़ लिया, “मैंने तो प्रारूप की एक-एक चीज़ अपनी निगरानी में ही करवाई थी, इसलिए मेरी तरफ से तो गलती की कोई गुंजाईश ही नहीं बचती. हां आखिरी का कुछ काम मैंने इन जूनियर्स पर छोड़ दिया था. हो सकता है वहीं कुछ गलतियां इनसे हो गयीं हों. ज़रा सा काम भी इनसे सही नहीं होता. सो इसकी ज़िम्मेदारी इन लोगों पर है. नेमा तुम बताओ तुम ही हैंडल कर रहे थे ना” यह कहते हुए रॉय ने सारा दोष नेमा पर मढ़ दिया.

रॉय की बातों से वहां बैठे सभी लोगों का खून खौल उठा पर वे खून का घूंट पी कर रह गये. सच तो यह था कि रॉय का इस पूरे प्रोजेक्ट के दौरान कहीं दूर-दूर तक भी अता -पता नहीं था. वह रोज़ या तो ऑन-लाइन शॉपिंग में

व्यस्त रहता या गेमिंग और बचे हुए वक़्त में मुत्थु की चापलूसी करता, काम से तो उसका कभी कोई वास्ता ही नहीं था. ऐसा नहीं है कि मुत्थु को यह सब मालूम नहीं था. लोग हतप्रभ थे कि ऐसे वक़्त में भी मुत्थु उसकी तारीफ़ करने से नहीं चूक रहा था और उन लोगों को टार्गेट कर रहा था जो मासूम और मेहनती थे.

बेलमार्क लैब्स के बाहर मुत्थु के साक्षात्कार के लिए पत्रकारों की भारी भीड़ जुट चुकी थी. वह बहुत खीझा हुआ था कि अब शॉन के साथ-साथ उसे सरकार को व बेवकूफ जनता को भी जवाब देना होगा. टी.वी पर बैठा मनन आज अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था. “हां.... तो अब आया ऊंट पहाड़ के नीचे” मनन मन ही मन बुदबुदाया. मनन भी सारे दिन से टी.वी स्क्रीन पर ही नज़रें गड़ाये बैठा था, एक-एक घटनाक्रम की फ़र्स्ट हैंड जानकारी लेते हुए.

हादसों की संख्या अब सैंकड़ों का आंकड़ा भी पार कर चुकी थी. लोगों को इन हादसों में भारी चोटें आयीं थीं. कुछ की हालत अभी भी बहुत नाज़ुक बनी हुई थी. मनन ने एक और जाम पीकर इस जीत का जश्न अकेले ही मनाया और फिर जोर से ठठाकर हंस पड़ा. टी.वी पर मुत्थु को देख वह

स्वयं से ही बोल उठा “ऐ बेलमार्क के मूर्ख कामचोर वैज्ञानिक तुम क्या समझ पाओगे “रॉसन” को?”

मनन “रॉसन प्रयोग शाला” का चीफ है. “रॉसन”, वह प्रतिष्ठित लैब है जिससे निकले हर शोध-पत्र पर दुनिया आँख मूंद कर विश्वास करती है. उनके व्दारा की गयी शोध पर कोई अविश्वास कर ही नहीं सकता. यह बहुत उच्च-स्तरीय कार्यो के लिए विश्व प्रसिध्द है. बेलमार्क के पूर्व चीफ वाल्देन ने जो रुतबा साइंस एवं टेक्नोलॉजी की फ़ील्ड में अर्जित किया था वही मनन का भी माना जाता है. किन्तु, दिल से आज भी मनन वाल्देन को अपना गुरु मानता है व उनकी बेहद इज्जत भी करता है. जब से मुत्थु ने बेलमार्क का कार्य भार संभाला था और रॉय को महत्वपूर्ण प्रोजेक्ट्स का लीड बनाया था मनन को दाल में कुछ काला लग रहा था. वह जानता था कि इन दो महामूर्खों की जोड़ी किसी भी लायक नहीं है सिवाय दूसरों के काम चुराने के.

इन दोनों चोरों को वह बखूबी जानता है इसीलिए उसे कुछ अजीब सा आभास हो रहा था. रॉसन में हो रहे कई अविष्कार सूरज की किरण देख पायें उसके पहने ही बेलमार्क वैसा ही मिलता-जुलता अविष्कार कर देता था. मुत्थु-रॉय की जोड़ी पर शक तो उसे पहले से ही था,

लेकिन वही शक अब यकीन में बदलता जा रहा था. उसके पास यह साबित करने के ठोस सबूत नहीं थे. मनन ने लैब में मौजूद भेदी का पता लगाने की बहुत कोशिशें कीं लेकिन उसके सारे प्रयास व्यर्थ गये. वह जानता था कि, भेदी लैब का ही कोई आदमी है जो रॉसन के सारे आविष्कारों को चोरी कर बेलमार्क तक पहुंचा रहा है. बेलमार्क चोरी इतनी सफाई से कर रही थी कि यह कहना मनन के लिए भी आसान नहीं है कि यह फॉर्मूला रॉसन का ही है, क्योंकि बेलमार्क की टीम चुराए हुए काम का पूर्ण रूपांतरण कर भी देती थी.

मनन ने भी कच्ची गोलियां नहीं खेलीं थीं. उसने ठान ही ली थी कि बेलमार्क को बेनकाब करके ही दम लेगा. वह बस एक बेहतरीन मौके की तलाश में था. अब वह हर पल चौकन्ना रहने के साथ ही बेलमार्क की हर डील पर भी नज़र रखने लगा था. जब हैपटिक्स की बेलमार्क के साथ डील का उसे पता चला तो वह समझ गया कि यही सही मौका है क्योंकि इस बार बेलमार्क को हैपटिक्स के अनुबंध के अनुसार न केवल तर्क ही सुझाना होगा बल्कि स्वयं ही एक प्रारूप भी तैयार करके देना होगा. मनन जानता था कि यह काम तो उन निकम्मों से होने से रहा. ज़ाहिर है कि वे इस बार भी सब कुछ चुरा कर प्रारूप बनाने की जुगत में

लग जायेंगे. मनन ने उसी तरह का एक ड्राफ्ट तैयार किया जो बेलमार्क को चाहिए था व चुनिन्दा वैज्ञानिकों को अपने केबिन में बुला कर उस ड्राफ्ट पर बड़ी सीक्रेसी के साथ चर्चा की जिससे सब पे ये ज़ाहिर हो जाये कि यह बहुत महत्वपूर्ण कार्य है. फिर उसने उस ड्राफ्ट को अपनी मेज़ की ऊपरी ड्रावर में जानबूझ कर छोड़ दिया और स्वयं कॉफी पीने चला गया. इस तरह ट्रैप डालकर आखिर वो चोर तक पहुँच ही गया. किन्तु, उसने पाया कि भेदी तो एक मामूली इंटर्न ही था. उसे यह बात गले नहीं उतर रही थी. जो भी हो उसने भेद पर से पूरा पर्दाफाश करने का एक फूलप्रूफ प्लान मन ही मन बना लिया था. उस प्लान के मुताबिक उसने पहले एक त्रुटी रहित ड्राफ्ट जो लैब में हर बार उत्तीर्ण हो तैयार किया था और फिर ठीक वैसा ही एक डुप्लीकेट ड्राफ्ट जो की त्रुटिपूर्ण था भी तैयार कर लिया था. हैपटिक्स के सामने प्रदर्शन के पहले यही डुप्लीकेट ड्राफ्ट जो की त्रुटिपूर्ण था ओरिजिनल से बदल दिया गया था क्योंकि इस डुप्लीकेट त्रुटिपूर्ण ड्राफ्ट की जांच करने का न तो उन मूर्खों के पास समय था न संज्ञान और इस तरह बेलमार्क उसके बिछाए जाल में फंस गया था. बस अब उसका असली चोर की शकल देखने का सपना पूरा होने वाला था. अपनी इस तरकीब में सफल हुए मनन का उत्साह बढ़ता ही जा रहा

था. वह जल्दी से जल्दी असली चोर तक पहुँच जाना चाहता था.

किन्तु यह क्या असली चोर की शक्ल देखकर तो उसके हाथों के तोते ही उड़ गये. सपने में भी उसने यह कल्पना नहीं की थी कि उसके आदर्श ऐसा कर सकते हैं. खैर, गलती की सजा तो मिलती ही है. हारे हुए वाल्डेन के लिए इससे बड़ी सजा और क्या हो सकती थी कि जिस संस्थान को वे किसी भी हद तक गिर कर बचाने का प्रयास कर रहे थे वही उनकी आँखों के सामने धूल में मिल रहा था.

मनन ने देखा रॉय छुपते-छुपाते वाल्डेन से फोन पर बात करने बेलमार्क से बाहर आया और कॉल कनेक्ट होते ही बोला, “सर मैंने तो स्वयं निरीक्षण किया था कि प्रारूप उस ड्राफ्ट के आधार पर ही बने, फिर ये सब कैसे हो गया? अब हम क्या करेंगे सर? हेल्लो...हेलो ...?”

वाल्डेन ने फोन की सिम निकाली और तोड़कर फेंक दी. वह समझ गया था कि बेलमार्क को अब बचाया नहीं जा सकता. वाल्डेन ने सोचा था, शायद ऐसा रास्ता चुनकर वह बेलमार्क को नया जीवन दे पायेंगे....पर नहीं....बेलमार्क वो जहाज़ था जो डूब रहा था उसमें कई छेद हो चुके थे....जो किसी के भी प्रयासों से अब बंद नहीं किये जा सकते थे.



3

डींगर

कोर्ट से बाहर निकलते ही विकास अपने बेटे रोशन से बोला, “रोश अपने सिर में जूँ कभी मत आने देना, कभी भी नहीं”. तुम जानते हो ना मुझे इनसे कितनी नफरत है. यह डींगर आपके पूरे व्यक्तित्व को कलंकित कर देते हैं. छुद्र...निकृष्ट कीड़े... जो सर चढ़ जाएँ तो निकालना मुश्किल हो जाता है. इनसे हमेशा संभल कर रहना रोश”. विकास के हाथों में हथकड़ी ज़रूर पड़ी थी पर उसका घमंड

अब भी सातवें आसमान पर था. पुलिस इंस्पेक्टर ने उसकी कलाई पर बंधी हथकड़ी को हलके से खींचते हुए वैन की ओर जल्दी चलने का इशारा किया तो विकास के चेहरे पर एक विद्रूप सी हंसी दौड़ गयी और वह होंठों ही होंठों में बुदबुदाया “एक और हिन्दुस्तानी डींगर”. फिर रोशन का कंधा थपथपाते हुए बोला याद रखना बेटा मैंने जो तुमसे अभी कहा और पुलिस इंस्पेक्टर के साथ वैन की तरफ बढ़ गया.

रोशन पीछे खड़ा सोंच रहा था कि डैड कभी नहीं बदलेंगे. उसे उनसे घृणा हो रही थी. वो खुश था की चलो देश में अब भी न्याय सबसे ऊपर है वर्ना उसके पिता जैसे प्रभावशाली आदमी को सजा मिल पाना आसान काम नहीं था. गर्व है रोशन को अपने देश पर और इसकी न्याय व्यवस्था दोनों पर ही. ये सदगुण उसने अपनी विदुषी मां से पाया है. मां, जिनपर डैड सदा हँसते रहते थे, मूढ़मति एवं पढ़ी-लिखी देहातिन कहकर.

डैड को उनके माता-पिता ने बहुत लाड़-प्यार से पाला था. पैसों की उनके पास कोई कमी नहीं थी सो उस समय के श्रेष्ठ स्कूल में उनका दाखिला करवाया गया था. बुआ ने ही उसे उस स्कूल की ढेर सारी कहानियां सुनायीं थीं उसे, क्योंकि वे भी उसी स्कूल में पढ़ीं थीं. उन्होंने ही बताया था

कि वहां की ज्यादातर शिक्षिकाएं एंग्लो इंडियन थीं, परंतु खुद को अंग्रेजों से कम नहीं समझती थीं. बच्चों के साथ डिसिप्लिन के नाम पर सख्त सज़ा देने में उन्हें बड़ा मज़ा आता था. जिन बच्चों के माता-पिता अच्छी अंग्रेज़ी नहीं बोल पाते उनका तो वे खूब मज़ाक उड़ातीं और उन्हें अनपढ़ गंवार कह कर हंसतीं.... जैसे अंग्रेज़ी बोलना ही पढ़ाई-लिखाई का अकेला माप-दंड हो. लेकिन उन बच्चों की तो और दुर्दशा थी जो गरीब घरों से आते थे. वे उनकी गरीबी का मखौल उड़ाते नहीं थकतीं, कभी उनके खुरदुरे हाँथ-पैरों पर हंसतीं तो कभी उनके भोजन पर, इतना ही नहीं वे उनसे बहुत खराब और गुलामों सा बर्ताव भी करतीं. खासकर उन बच्चों से जिनकी त्वचा का रंग गहरा या गेंहुआ होता उन्हें तो वे कोयला तक कह कर संबोधित करतीं.

बुआ ने रोशन को यह भी बताया था कि जो बच्चे टीचरों द्वारा निर्देशित कॉपी व किताब नहीं खरीद पाते थे उन्हें वे बेइंतहा बेईज्जत कर कक्षा से बाहर खड़ा कर देतीं, जिससे वहां से आता-जाता हर शिक्षक उनकी खिल्ली उड़ा सके. वे स्कूल की नन्हीं-नन्हीं बच्चियों तक को नहीं बख्शतीं, जब भी स्कूल में उत्सव के दौरान यह बच्चियां सुंदर फ्रॉक इत्यादि पहन कर आतीं तो उन्हें अपने पास बुलाकर उन्हें

जोर-जोर से डांटती-फटकारतीं और ताने मारते हुए कहतीं कि कितनी कुसंस्कारी लडकियां हो. अभी से अंग प्रदर्शन कर रही हो, शर्म नहीं आती तुम्हारे माता-पिता को ऐसे बेहूदे कपड़े पहनाते हुए. बुआ को अब भी यह बातें बताते हुए उनपर वैसा ही क्रोध आ जाता जैसा शायद तब आता होगा. फिर खुद को संभाल कर वो आगे कहतीं की हास्यास्पद बात तो यह थी कि उनमें से ज्यादातर टीचरें खुद स्लीवलेस मिनी स्कर्ट ही पहनतीं थी, और यदि कभी-कभार कोई साड़ी पहन भी लेतीं तो ब्लाउज स्लीवलेस ही धारण करतीं थीं यह हिडिम्बायें. उन सभी को स्वयं को एंग्लो कहने पर बड़ा नाज़ होता था पर उसमें लगा इंडियन उन्हें बिलकुल रास नहीं आता था. जैसे उन्हें हम भारतीयों से घिन आती हो. कभी-कभार उनका कोई दूर-दराज़ का गरीब यूरोपियन रिश्तेदार उनसे मिलने उनके घर आ जाता तो उसे धन्य हो स्कूल में लाकर ऐसे मिलवाती जैसे वह कोई यूरोपियन एम्बेसेडर हो.

बुआ हंसती और कहतीं कि, भाई समेत ज्यादातर बच्चे अपनी इन आधी-अधूरी “भारतीय” टीचरों से बड़े प्रभावित होते और उन्हीं के आचरणों का अनुगमन सदैव करने को तत्पर रहते. यह लोग भी उन्हीं की तरह बोलना, चलना, लोगों की गलत अंग्रेज़ी उच्चारण पर खिल्ली उड़ाना,

आधुनिकता का आवरण ओढ़ पाश्चात्य संस्कृति में ढलने का प्रयास करना, इत्यादि करने की सदैव चेष्टा करते. बुआ इतनी बार यह बातें रोशन को बता चुकीं थीं कि उसे सब कुछ ऐसे याद हो गया था मानों ये सब उसीने जिया हो और यह सारी त्रासदी भी जैसे उसी पर बीती हो.

वह पिता की नकलची प्रवृत्ति से हमेशा नाखुश रहता. वो जानता था कि इसमें सारा दोष उन आधी-भारतीय महिलाओं का ही है जो विकास के सिर में बचपन से घुस गयीं हैं और आज तक उसका शोषण कर रही हैं. आज भी डैड उन्हीं को अपना आदर्श मानते हैं. सिर से उसे याद आया कि कैसे बुआ ने बताया था, “एक बार कैसे एक टीचर एक बालक को पकड़ कर प्रार्थना सभा के स्टेज पर ले आयी थीं और कर्कश ध्वनि में माइक पर ही चीखीं थीं, “इसके सर पे जूं चलता, टुम कैसा स्टुपिड बच्चा है, ऐसा कोई और भी होइंगा तो उसका बाप को बुलाकर उसके सर में जूं छोड़ देंगा हम. याद रखना तुम सब, जूं नॉट एक्सेप्टेबल मेरिको.” उनकी हां में हां मिलाते हुए हिंदी के आचार्य ने भी अपनी तरफ से जोड़ दिया था, “बिलकुल सही फरमा रही हैं मैडम, सर में “डींगर” अर्थात् जूं का होना अति-अवांछनीय है.

उसी दिन से विकास के मन में जूँ के प्रति भय सा बैठ गया था. उसे अपने रीति-रिवाजों व संस्कारों से भी घृणा होने लगी थी. वह भारतीयता से नफरत करने लगा था व अक्सर बोल भी देता कि इससे तो अच्छा होता की अंग्रेज़ कभी भारत छोड़कर जाते ही नहीं. उसे हर भारतीय में अब सिर्फ़ डींगर ही नज़र आता. उसके लिए सिर्फ़ गोरी चमड़ी और अंग्रेज़ी भाषा ही सभ्यता का पर्याय बन गए थे. उसने स्कूल से शायद ही कुछ अच्छी बातें सीखीं हों. वह आज की आधुनिक सोच के हिसाब से भी बहुत ही दकियानूस था खासकर स्त्रियों के प्रति तो वह बेहद असंवेदनशील था. उनके कपड़ों पर व उनकी पढ़ाई-लिखाई पर हमेशा तीखी और घटिया टिप्पणी करने से वह कभी बाज न आता बिलकुल अपने बचपन की उन एंग्लो-इंडियन टीचरों की तरह.

विकास ने स्कूल से आगे की पढ़ाई लंदन में पूरी करी और फिर हिंदुस्तान वापस आकर देश की एक नामी कंपनी में उच्च पद हांसिल कर लिया. यह कंपनी सेना के उपयोग में आने वाली वस्तुएं बनाती थी. विकास जो मन ही मन अंग्रेज़ों और अंग्रेज़ी का पुजारी था ने अपने ही देश की गोपनीय सैन्य सूचनाएं एक यूरोपीय देश को लीक तक कर दीं थीं. हालांकि उसका यह भेद जल्दी ही पकड़ लिया गया

और मुकदमे के बाद वह दोषी भी पाया गया. आज उसी के दंड स्वरूप उसे दस साल बमुशक्कत कैद और एक करोड़ रुपये का जुर्माना हुआ था.

पुलिस वैन को जाते हुए देखकर रोशन सोंच रहा था कि, “डैड को तो उनके किये का दंड मिल गया जो की उसकी समझ में काफी कम है. परन्तु उसे अफ़सोस इस बात का हो रहा था कि.... उन डींगरों का क्या जिन्होंने विकास जैसे हजारों लाखों डींगर इस देश में फैला दिए हैं.” वितृष्णा और नफ़रत से उसका मन उन दोगले डींगरों के प्रति भर गया.

अंशिका उपाध्याय : एक संक्षिप्त परिचय



अंशिका उपाध्याय ने अमृता विश्व विद्यापीठ (कोयम्बटूर) से इलेक्ट्रॉनिक्स एवं कम्प्युनिकेशन इंजीनियरिंग में बी.टेक तथा यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिशीगन एन अर्बोर (यू.एस.ए.) से एम.एस कंप्यूटर एंड इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त की है. उनके अनेक शोध पत्र अंतर्राष्ट्रीय जर्नल्स में प्रकाशित हुए हैं. उन्होंने एक शोध पत्र कैम्ब्रिज (यू.के.) में भी प्रस्तुत किया है. वे एक सशक्त एवं संवेदनशील लेखिका हैं. कहानी संग्रह “अभिव्यक्ति” में उन्होंने बड़े ही ज्वलंत मुद्दे बिना किसी लाग-लपेट के सीधी-सरल भाषा में प्रस्तुत किये गए हैं, जो कोई मंजा हुआ साहित्यकार ही कर सकता है. वे भारत की गंगा-जमुनी तहज़ीब का वो बिरवा हैं जो समय के साथ निखरता ही जायेगा. विज्ञान एवं तकनीक के साथ साहित्य का अति-दुर्लभ और सुंदर मिश्रण अंशिका उपाध्याय में साकार हुआ है. पाठकों को उनसे सदैव ऐसी ही उम्दा रचनाओं की उम्मीद रहेगी.